गद्य मनोहर

पाठ्य पुस्तक

बी.सी.ए/बी.एससी (फ्येड) तथा एस.ई.पी अधीन सभी बी.सी.ए कोर्स

BCA/BSc (FAD) and BCA Courses under SEP

प्रथम सेमिस्टर / First Semester

संपादक

प्रो. प्रभु उपासे
डॉ. सुधामणी एस.

प्रकाशक

प्रसारांग
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु-560001

GADYA MANOHAR

Edited By:

Prof. Prabhu Upase

Dr.Sudhamani S.

© बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण - 2024

Pages – 108

प्रधान संपादक

प्रो.शेखर

मूल्यः-

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु-560001

भूमिका

बेंगलुरु नगर विश्वविद्यालय में 2024-25 शैक्षिक वर्ष से एसईपी-2024 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा है।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात हिंदी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण और सराहना कैसे किया जाए और दिए गए पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली-भांति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी है। एसईपी सेमेस्टर (सीबीसीएस) पद्धति के अनुसार यह पाठ्यक्रम निर्माण किया गया है।

इस पृष्ठभूमि में हिंदी अध्ययन मंडल ने विभाग अध्यक्ष प्रो. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्यपुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह गद्य संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाजशास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

प्रो.लिंगराज गांधी

कुलपति

बेंगलुरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु - 560 001

प्रधान संपादक की कलम से.....

बेंगलुरु नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नए-नए विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नई एसईपी-2024 नीति के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एसईपी सेमेस्टर पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले संपादकों के प्रति मैं आभारी हूं।

इस नई पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय प्रोफेसर लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को राज्य शिक्षा नीति के ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किए गए हैं। आशा है की सभी विद्यार्थी गण इससे अलश्य लाभान्वित होंगे।

प्रो.शेखर

अध्यक्ष (बी.ओ.एस)

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु - 560001

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	पाठ का नाम *व* विधा	रचनाकार	पृ.सं.
1.	हार की जीत *(**कहानी**)*	सुदर्शन	**6-17**
2.	लखनऊ *(**यात्रा वृत्तान्त**)*	भारतेन्दु हरिश्चंद्र	**18-25**
3.	नुक्कड़ नाटक *(**प्रहसन**)*	लक्ष्मीकांत वैष्णव	**26-38**
4.	टार्च बेचनेवाले *(**व्यंग्य**)*	हरिशंकर परसाई	**39-50**
5.	गिल्लु *(**रेखा चित्र**)*	महादेवी वर्मा	**51-60**
6.	मानव और विज्ञान *(**वैज्ञानिक लेख**)*	प्रो.जी.सुन्दर रेड्डी	**61-70**
7.	क्रोध *(**निबंध**)*	आ.रामचंद्र शुक्ल	**71-90**
8.	पर्यावरण *(**संग्रहित निबंध**)*	प्रभु उपासे	**91-96**
9.	**क**) पारिभाषिक शब्दावली (तकनीकी) **ख**) समानार्थी शब्द **ग**) अनेक शब्दों के लिए एक शब्द		**97-108**

हार की जीत (कहानी)

-सुदर्शन

लेखक परिचयः-सुदर्शन (1895-1967) प्रेमचन्द परम्परा के कहानीकार थे। इनका असली नाम बदरीनाथ है। मुंशी प्रेमचंद और उपेन्द्रनाथ अश्क की तरह सुदर्शन हिन्दी और उर्दू में लिखते रहे थे। इनका दृष्टिकोण सुधारवादी है। ये आदर्शोन्मुख यथार्थवादी थे। अपनी प्रायः सभी प्रसिद्ध कहानियों में इन्होंने समस्यायों का आदशर्वादी समाधान प्रस्तुत किया है। सुदर्शन की भाषा सरल, स्वाभाविक, प्रभावोत्पादक और मुहावरेदार है।

मुख्य धारा के साहित्य-सृजन के अतिरिक्त उन्होंने अनेकों फिल्मों की पटकथा और गीत भी लिखे हैं। सोहराब मोदी की सिकंदर (1941) सहित अनेक फिल्मों की सफलता का श्रेय उनके पटकथा लेखन को जाता है। सन 1935 में उन्होंने "कुंवारी या विधवा" फिल्म का निर्देशन भी किया। वे 1950 में बने फिल्म लेखक संघ के प्रथम उपाध्यक्ष थे। वे 1945 में महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तावित अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी प्रचार सभा वर्धा की साहित्य परिषद् के सम्मानित सदस्यों में थे। उनकी रचनाओं में तीर्थ-यात्रा,

पत्थरों का सौदागर, पृथ्वी-वल्लभ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। फिल्म धूप-छाँव (1935) के प्रसिद्ध गीत तेरी गठरी में लागा चोर, बाबा मन की आँखें खोल आदि उन्ही के लिखे हुए हैं।

"हार की जीत" इनकी पहली कहानी है और 1920 में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी।

***

(एक)

माँ को अपने बेटे, साहूकार को अपने देनदार और किसान को अपने लहलहाते खेत देखकर जो आनंद आता है, वही आनंद बाबा भारती को अपना घोड़ा देखकर आता था। भगवत-भजन से जो समय बचता, वह घोड़े को अर्पण हो जाता। वह घोड़ा बड़ा सुंदर था, बड़ा बलवान। उसके जोड़ का घोड़ा सारे इलाक़े में न था। बाबा भारती उसे “सुलतान” कह कर पुकारते, अपने हाथ से खरहरा करते, ख़ुद दाना खिलाते और देख-देखकर प्रसन्न होते थे। ऐसे लगन, ऐसे प्यार, ऐसे स्नेह से कोई सच्चा प्रेमी अपने प्यारे को भी न चाहता होगा। उन्होंने अपना सब-कुछ

छोड़ दिया था, रुपया, माल, असबाब, ज़मीन, यहाँ तक कि उन्हें नागरिक जीवन से भी घृणा थी। अब गाँव से बाहर एक छोटे-से मंदिर में रहते और भगवान का भजन करते थे; परंतु सुलतान से बिछुड़ने की वेदना उनके लिए असह्य थी। मैं इसके बिना नहीं रह सकूँगा, उन्हें ऐसी भ्रांति-सी हो गई थी। वे उसकी चाल पर लट्टू थे। कहते, ऐसे चलता है जैसे मोर घन-घटा को देखकर नाच रहा हो। गाँवों के लोग इस प्रेम को देखकर चकित थे, कभी-कभी कनखियों से इशारे भी करते थे, परंतु बाबा भारती को इसकी परवा न थी। जब तक संध्या-समय सुलतान पर चढ़कर आठ-दस मील का चक्कर न लगा लेते, उन्हें चैन न आता।

खड्गसिंह उस इलाक़े का प्रसिद्ध डाकू था। लोग उसका नाम सुनकर काँपते थे। होते-होते सुलतान की कीर्ति उसके कानों तक भी पहुँची। उसका हृदय उसे देखने के लिए अधीर हो उठा। वह एक दिन दोपहर के समय बाबा भारती के पास पहुँचा और नमस्कार करके बैठ गया।

बाबा भारती ने पूछा, “खड्गसिंह, क्या हाल है?”

खड्गसिंह ने सिर झुकाकर उत्तर दिया, “आपकी दया है।”

“कहो, इधर कैसे आ गए?”

“सुलतान की चाह खींच लाई।”

“विचित्र जानवर है। देखोगे तो प्रसन्न हो जाओगे।”

“मैंने भी बड़ी प्रशंसा सुनी है।”

“उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी!”

“कहते हैं देखने में भी बहुत सुंदर है।”

“क्या कहना! जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय पर उसकी छवि अंकित हो जाती है।”

“बहुत दिनों से अभिलाषा थी, आज उपस्थित हो सका हूँ।”

बाबा और खड्गसिंह दोनों अस्तबल में पहुँचे। बाबा ने घोड़ा दिखाया घमंड से, खड्गसिंह ने घोड़ा देखा आश्चर्य

से। उसने सैकड़ों घोड़े देखे थे, परंतु ऐसा बाँका घोड़ा उसकी आँखों से कभी न गुज़रा था। सोचने लगा, भाग्य की बात है। ऐसा घोड़ा खड्गसिंह के पास होना चाहिए था। इस साधु को ऐसी चीज़ों से क्या लाभ? कुछ देर तक आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा। इसके पश्चात् हृदय में हलचल होने लगी। बालकों की-सी अधीरता से बोला, "परंतु बाबाजी, इसकी चाल न देखी तो क्या?"

(दो)

बाबा जी भी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशंसा दूसरे के मुख से सुनने के लिए उनका हृदय अधीर हो गया। घोड़े को खोलकर बाहर लाए और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। एकाएक उचककर सवार हो गए। घोड़ा वायु-वेग से उड़ने लगा। उसकी चाल देखकर, उसकी गति देखकर खड्गसिंह के हृदय पर साँप लोट गया। वह डाकू था और जो वस्तु उसे पसंद आ जाए उस पर अपना अधिकार समझता था। उसके पास बाहुबल था और

आदमी भी। जाते-जाते उसने कहा, “बाबाजी, मैं यह घोड़ा आपके पास न रहने दूँगा।”

बाबा भारती डर गए। अब उन्हें रात को नींद न आती थी। सारी रात अस्तबल की रखवाली में कटने लगी। प्रतिक्षण खड्गसिंह का भय लगा रहता, परंतु कई मास बीत गए और वह न आया। यहाँ तक कि बाबा भारती कुछ लापरवाह हो गए और इस भय को स्वप्न के भय की नाई मिथ्या समझने लगे।

संध्या का समय था। बाबा भारती सुलतान की पीठ पर सवार होकर घूमने जा रहे थे। इस समय उनकी आँखों में चमक थी, मुख पर प्रसन्नता। कभी घोड़े के शरीर को देखते, कभी उसके रंग को, और मन में फूले न समाते थे।

सहसा एक ओर से आवाज़ आई, “ओ बाबा, इस कंगले की सुनते जाना।”

आवाज़ में करुणा थी। बाबा ने घोड़े को रोक लिया। देखा, एक अपाहिज वृक्ष की छाया में पड़ा कराह रहा है। बोले, “क्यों तुम्हें क्या कष्ट है?”

अपाहिज ने हाथ जोड़कर कहा, “बाबा, मैं दुखियारा हूँ। मुझ पर दया करो। रामाँवाला यहाँ से तीन मील है, मुझे वहाँ जाना है। घोड़े पर चढ़ा लो, परमात्मा भला करेगा।”

“वहाँ तुम्हारा कौन है?”

“दुर्गादत्त वैद्य का नाम आपने सुना होगा। मैं उनका सौतेला भाई हूँ।”

बाबा भारती ने घोड़े से उतरकर अपाहिज को घोड़े पर सवार किया और स्वयं उसकी लगाम पकड़कर धीरे-धीरे चलने लगे।

सहसा उन्हें एक झटका-सा लगा और लगाम हाथ से छूट गई। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि अपाहिज घोड़े की पीठ पर तनकर बैठा और घोड़े को दौड़ाए लिए जा रहा है। उनके मुख से भय, विस्मय और

निराशा से मिली हुई चीख़ निकल गई। वह अपाहिज डाकू खड्गसिंह था।

बाबा भारती कुछ देर तक चुप रहे और कुछ समय पश्चात् कुछ निश्चय करके पूरे बल से चिल्लाकर बोले, “ज़रा ठहर जाओ।”

खड्गसिंह ने यह आवाज़ सुनकर घोड़ा रोक लिया और उसकी गरदन पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, “बाबाजी, यह घोड़ा अब न दूँगा।”

“परंतु एक बात सुनते जाओ।”

खड्गसिंह ठहर गया। बाबा भारती ने निकट जाकर उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा जैसे बकरा क़साई की ओर देखता है और कहा, “यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका है। मैं तुमसे इसे वापस करने के लिए न कहूँगा। परंतु खड्गसिंह, केवल एक प्रार्थना करता हूँ। इसे अस्वीकार न करना, नहीं तो मेरा दिल टूट जाएगा।”

“बाबाजी, आज्ञा कीजिए। मैं आपका दास हूँ, केवल यह घोड़ा न दूँगा।”

“अब घोड़े का नाम न लो। मैं तुमसे इस विषय में कुछ न कहूँगा। मेरी प्रार्थना केवल यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।”

खड्गसिंह का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। उसका विचार था कि उसे घोड़े को लेकर यहाँ से भागना पड़ेगा, परंतु बाबा भारती ने स्वयं उसे कहा कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना। इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खड्गसिंह ने बहुत सोचा, बहुत सिर मारा, परंतु कुछ समझ न सका। हारकर उसने अपनी आँखें बाबा भारती के मुख पर गड़ा दीं और पूछा, “बाबाजी, इसमें आपको क्या डर है?”

सुनकर बाबा भारती ने उत्तर दिया, “लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वो किसी ग़रीब पर विश्वास न करेंगे।”

और यह कहते-कहते उन्होंने सुलतान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ लिया जैसे उनका उससे कभी कोई संबंध ही न रहा हो। बाबा भारती चले गए। परंतु उनके शब्द खड्गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूँज रहे थे। सोचता था, कैसे ऊँचे विचार हैं, कैसा पवित्र भाव है! उन्हें इस घोड़े से प्रेम था, इसे देखकर उनका मुख फूल की नाई खिल जाता था। कहते थे, "इसके बिना मैं रह न सकूँगा।" इसकी रखवाली में वे कई रात सोए नहीं। भजन-भक्ति न कर रखवाली करते रहे। परंतु आज उनके मुख पर दुःख की रेखा तक दिखाई न पड़ती थी। उन्हें केवल यह ख़याल था कि कहीं लोग ग़रीबों पर विश्वास करना न छोड़ दें। उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुषयत्व की हानि पर न्योछावर कर दिया। ऐसा मनुष्य, मनुष्य नहीं देवता है।

(तीन)

रात्रि के अंधकार में खड्गसिंह बाबा भारती के मंदिर पहुँचा। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश पर तारे टिमटिमा

रहे थे। थोड़ी दूर पर गाँवों के कुत्ते भौंक रहे थे। मंदिर के अंदर कोई शब्द सुनाई न देता था। खड्गसिंह सुलतान की बाग पकड़े हुए था। वह धीरे-धीरे अस्तबल के फाटक पर पहुँचा। फाटक किसी वियोगी की आँखों की तरह चौपट खुला था। किसी समय वहाँ बाबा भारती स्वयं लाठी लेकर पहरा देते थे, परंतु आज उन्हें किसी चोरी, किसी डाके का भय न था। हानि ने उन्हें हानि की तरफ़ से बे-परवाह कर दिया था। खड्गसिंह ने आगे बढ़कर सुलतान को उसके स्थान पर बाँध दिया और बाहर निकलकर सावधानी से फाटक बंद कर दिया। इस समय उसकी आँखों में नेकी के आँसू थे।

अंधकार में रात्रि ने तीसरा पहर समाप्त किया, और चौथा पहर आरंभ होते ही बाबा भारती ने अपनी कुटिया से बाहर निकल ठंडे जल से स्नान किया। उसके पश्चात्, इस प्रकार जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो, उनके पाँव अस्तबल की ओर मुड़े। परंतु फाटक पर पहुँचकर उनको अपनी भूल प्रतीत हुई। साथ ही घोर निराशा ने पाँवों को मन-मन-भर का भारी बना दिया। वे वहीं रुक गए।

घोड़े ने स्वाभाविक मेघा से अपने स्वामी के पाँवों की चाप को पहचान लिया और ज़ोर से हिनहिनाया।

बाबा भारती दौड़ते हुए अंदर घुसे, और अपने घोड़े के गले से लिपटकर इस प्रकार रोने लगे, जैसे बिछुड़ा हुआ पिता चिरकाल के पश्चात् पुत्र से मिलकर रोता है। बार-बार उसकी पीठ पर हाथ फेरते, बार-बार उसके मुँह पर थपकियाँ देते और कहते थे “अब कोई ग़रीबों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा।”

थोड़ी देर के बाद जब वह अस्तबल से बाहर निकले, तो उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। ये आँसू उसी भूमि पर ठीक उसी जगह गिर रहे थे, जहाँ बाहर निकलने के बाद खड्गसिंह खड़ा रोया था।

दोनों के आँसुओं का उसी भूमि की मिट्टी पर परस्पर मिलाप हो गया।

*****

लखनऊ (यात्रा वृत्तांत)

-भारतेंदु हरिश्चंद्र

लेखक परिचयः- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (9 सितंबर 1850 - 6 जनवरी 1885)को आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोये। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया। ब्रिटिश राज की शोषक प्रकृति का चित्रण करने वाले उनके लेखन के लिए उन्हें युग चारण माना जाता है।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिन्दी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिन्दी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। उन्होंने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'कविवचनसुधा' और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक पत्रकार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अलावा वे लेखक, कवि, सम्पादक, निबन्धकार, एवं कुशल वक्ता भी थे। भारतेन्दु जी ने मात्र चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकर्म पथदर्शक बन गया।

उन्होंने अंग्रेज़ी शासन के तथाकथित न्याय, जनतंत्र और उनकी सभ्यता का पर्दाफाश किया। उनके इस कार्य की सराहना करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखते हैं- 'देश के रूढ़िवाद का खंडन करना और महंतों, पंडे-पुरोहितों की लीला प्रकट करना निर्भीक पत्रकार हरिश्चन्द्र का ही काम था।'

'लखनऊ' यात्रावृत्तांत में लेखक ने भारत में कंपनी सरकार के शासन काल में आम जनता की स्थिति तथा सामाजिक स्तितिगतियों का वर्णन किया है।

***

मेरे लखनऊ गमन का वृतांत निश्चय आप के पाठकगणों को मनोरंजक होगा। कानपुर से लखनऊ आने के हेतु एक कंपनी अलग है इसका नाम अ.रू.रे. कंपनी है इसका काम अभी नया है और इसके गार्ड इत्यादिक सत्र काम चलाने वाले हिंदूस्तानी है। स्टेशन कान्हपुर का तो दरिद्र सा है पर लखनऊ का अच्छा है। लखनऊ के पास पहुँचते ही मस्जिदों के ऊँचे-ऊंचे कंगूर दूर ही से दिखाते है, परंतु नगर में प्रवेश करते ही एक बड़ी विपत आ पड़ती है, वह यह है कि चुंगी के राक्षसों का मुख देखना होता हैं हम लोग ज्यों ही नगर में प्रवेश करने लगे जमदूतों ने रोका सब गठरियों को खोल-खोल के देखा जब कोई वस्तु न निकली तब अंगूठियों पर (जो हम लोगों के पास थी) आ

झुके बोले इसका महसूल दे जाओ। हम लोग उतर के चौकी गए, वहाँ एक ठिंगना सा काला रुखा मनुष्य बैठा था। नटखटपन उसके मुखरे से बरसता था। मैंने पूछा क्यौं साहब बिना बिकरी की वस्तुओं पर भी महसूल लगता है, बोले हाँ। काग़ज़ देख लिजिए छपा हुआ है मैंने काग़ज़ देखा उसमें भी यही छापा था।

मुझे पढ़ के यहाँ की गवन्मेंट के इस अन्याय पर बड़ा दुख हुआ। मैंने उन से पूछा कि कहिए कितना महसूल दूँ, आप नाक और गाल फुला के बोले कि मैं कुछ जवहिरी नहीं हूँ कि इन अंगूठियों का दाम जानू। मोहर कर के गोदाम को भेजूँगा वहाँ सुपरेडेंट साहब साँझ को आकर दाम लगावैंगे। मैंने कहा कि साँझ तक भूखों कौन मरैगा। बोले इस से मुझे क्या कहाँ तक लिखूँ इस दुष्ट ने हम लोगों को बहुत छकाया। अंत में मुझे क्रोध आया, तब मैंने इस को नृसिंह रुप दिखाया और कहा कि मैं तेरी रिपोर्ट करुँगा। पहिले तो आप भी बिगड़े, पीछे ढीले हुए,

बोले अच्छा जो आप के धर्म में आवै दे दीजिए। तीन रुपये देकर प्राण बचे। तब उनके सिपाहयों ने इनाम माँगा मैंने पूछा क्या इसी घंटो दुख देने का इनाम चाहिए? किसी प्रकार इस विपत से छूट कर नगर में आए। नगर पुराना तो नष्ट हो गया है। जो बचा है वह नई सड़क से इतना नीचा है कि पाताल लोक का नमूना सा जान पड़ता है। मस्जिद बहुत सी हैं। गलियाँ सकरी और कीचड़ से भरी हुई बुरी गंदी दुर्गंधमय। सड़क के घर सुथरे बने हुए हैं। नई सड़क बहुत चौड़ी और अच्छी है। जहाँ पहिले जौहरी बाज़ार और मौनाबाज़ार था वहाँ गदहे चरते हैं और सब इमामबाड़ो में किसी में डाकघर कहीं अस्पताल कहीं छापाख़ाना हो रहा है। रुमी दर्वाज़ा नवाब आसिफुदोला की मस्जिद और मच्छीभवन का सर्कारी किला बना है। बेदमुश्क के हौजों में गोरे मूतते हैं। केवल दो स्थान देखने योग्य बचे हैं पहिला हुसैनाबाद और दूसरा केसर बाग़।

हुसैनाबाद के फाटक बाहर एक षट्कोण तालाब सुंदर बना है और एक बारहदर भी उसके ऊपर है और हुसैनाबाद के फाटक के भीतर एक नहर बनी है और बाई ओर ताजगंज का सा एक कमरा बना हुआ है। वह मकान जिस्में बादशाह गड़े है। देखने योग्य है बड़े बड़े कई सुंदर झाड़ रखे हुए है और इस हुसैनाबाद के दीवारो में लोहे के गिलास लगाने के इतने अंकुड़े लगे है कि दीवार काली हो रही है। केसर बाग भी देखने योग्य है। सुनहरे शिखर धूप-में चमकते है। बीच में एक बारदार रामणीय बनी है और चारों ओर अनेक सुंदर-सुंदर बंगले बने हैं जिसका नाम लंका है उसमें कचहरी होती है और औध के तअल्लुकेदारों को मिले हैं जहाँ मोती लुटते हैं घूल उड़ती है। यहाँ एक पीपल का पेड़ श्वेत रंग का देखने योग्य है।

यहाँ के हिंदू रईस धनिक लोग असभ्य हैं और पुरानी बातें उनके सिर में भरी हैं। मुझ से जो मिला उस ने

मेरी आमदनी गाँव रुपया पहिले पूछा और नाम पीछे बरन बहुत से आदमा संग में न लाने की निंदा सब ने किया पर जो लोग शिक्षित हैं वे सभ्य हैं। परंतु रंडियों प्रायः सब के पास नौकर हैं और मुस्लमान सब बाह्य सभ्य हैं बोलने में बड़े चतुर हैं। यादि कोई भीख माँगता है या फल बेंचता है तो वह भी एक अच्छी चाल से थोड़ी अवस्था के पुरुषों में भी स्त्रीपन झलकता है। बातें यहाँ की बड़ी लंबी चौड़ी बाहर से स्वचछ पर भीतर से मलीन स्त्रियाँ सुंदर तो ऐसी वहीं पर आँख लड़ाने में बड़ी चतुर। यहाँ भंगोड़िने रंडियों के भी कानन काटती हैं। हुक्के की भंग की दूकानों पर सज के बैठती हैं और नीचे चाहने वालो की भीड़ खड़ी रहती है पर सुंदर कोई नहीं।

और भी यहाँ अमीनाबाह हज़रतगंज सौदागरों की दूकाने, चौक, मुनशी नवलकिशोर का छापाख़ाना और नवाब मशकूरुद्दौला की चित्र की दूकान इत्यादि स्थान देखने योग्य हैं।

जैसा कुछ हैं फिर भी अच्छा है।

ईश्वर यहाँ के लोगों को विद्या का प्रकाश दें और पुरानी बातें ध्यान से निकालें।

आप का चिरानुगत
यात्री

* * * * *

स्रो त : पुस्तक : भारतेंदु के निबंध (पृष्ठ 59) संपादक : केसरीनारायण शुक्ल
प्रकाशन : सरस्वती मंदिर जतनबर,बनारस

नुक्कड नाटक (प्रहसन)

-लक्ष्मीकांत वैष्णव

लेखक परिचय: लक्ष्मीकांत का जन्म 1940 ई में मध्यप्रदेश में हुआ। व्यंग्य लेखन में 1965 ई से बराबर निरत आप 'नाटक नहीं' विधा के जनप्रिय एकांकी लेखक है। व्यनंग्य ही आपके निबंध, नाटक, लघुकथा, कहानी तथा एकांकी की विशेषता है।

प्रस्तुत एकांकी :

नाटक नहीं एकांकी-विधा भी 'अकविता' एवं 'अकहानी' विधा की तरह जनप्रिय है, जिसका प्राण व्यंग्य है। प्रस्तुत नाटक में पुलिस द्वारा अबोध जनता किस प्रकार लुटाई जाती है--- इसका सहज एवं सजीव चित्रण परिलक्षित है। नृशंस समाज के विरुद्ध लडने में नर-सिंह बनने का संदेश यहां द्रष्टव्य है।

***

सुनमान सडक के मोड पर। बुरके वाली औरत एक तरफ से आयी। पीले कपडे वाला दूसरी तरफ से आया। दोनों 'हरी घास पर क्षण भर' बैठे। दो बातें की और उठने को हुए। ठीक से उठ पायें इससे पहले दो सिपाही घटनास्थल पर उपस्थित होते हैं। एक एक तरफ से आता है, दूसरा दूसरी तरफ से।

"क्य कर थे?" पहला सिपाही कडक कर पूछ्ता है।

"क्यों?" लडका बोला।

"हम पूछ रहे हैं कि यहां सूने में कर क्या रहे थे?"

बुरके वाली औरत दूसरी ओर मुंह फेर कर खडी हो जाती है। हालांकी वह बुरका पहने थी और ऐसी हालत में वह इधर मुंह करके खडी रहती, कोई खास फर्क नहीं पडता था। हो सकता है, ऐसी स्थितियों में 'कठिनाई आने पर औरत मुंह लेती है' इस कहावत को सार्थक कर रही हो।

"बैटे थे।" लडके के स्वर में थोडी सख्ती, थोडा आश्चर्य था।

"वो तो हम भी देख रहे थे।" दूसरा सिपाही बॊला, "यह बुरकेवाली कौन है?"

"औरत है।" लडका बोला।
"वो तो दिख रही है कि औरत है। तभी तो बुरखा पहने है। मगर तुम इसके साथ क्या कर रहे थे ?"
"बाते कर रहा था।"
"सिर्फ बातें कर रहे थे? पटाय नहीं रहे थे?"
"क्या मतलब?" लडका नाराज हो सकता है।
"तुनतुनाओ मत हीरो। तुनतुनाहो तो अब ही सब हीरोगिरी निकारी दी है।" हाथ का डंडा हवा में घुमाता है और साथी से कहता है, "ले चलो साले को।"

दोनों लडके का हाथ पकड लेते है। लडका छूटने के लिए छ्टपटाता है| एक तीसरा आदमी उधर से गुजरता है।

आदमी : क्या हो रहा है?
सिपाही : यह साला लौंडिया पटा रहा था।
आदमी : कौन-सी लौंडिया?
सिपाही : वो जो बुरका पहने खडी है।
लडका : वो मेरी औरत है भाई साहब।
सिपाही : अच्छा! अब औरत हो गई! वो उधर से आयी, ये इधर से आया। साले, आदमी-औरत होते

तो दोनों एक ही रास्ते न चलते?

लडका : कही लिखा है कि आदमी और औरत एक ही रास्ते चले। क्यों भाई साहब?

सिपाही : भाई साहब क्या बतलायेंगे? थाने चलो, वहां हम बतलायेंगे।

आदमी : मगर यह बात इतनी अधिक गंभीर तो नहीं?

सिपाही : गंभीर कैसे नहीं गी? मालुम नहीं किस शरीफ आदमी की औरत हो। कल को लेकर भाग जायेगा तो आप ढूंढ कर लायेंगे क्या?

आदमी : पर आप लोग उस औरत से तो पूछ देखो। और उसे कोई एतराज नहीं इसके साथ बैठने-बात करने में तो हमको-आपको क्या?

लडका : पर मैं कह रहा हूं कि वो मेरी औरत है।

सिपाही : औरत नहीं है, हम कहते है।

लडका : मै कहता हूं औरत है।

सिपाही : नहीं है।

लडका : औरत है।

आदमी : खैर, यो औरत तो है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। सवाल यह कि वो तुम्हारी औरत

है या नहीं?

सिपाही : कोई सबूत है तुम्हारे पास?

लडका : अब सबूत भी देना पडेगा।

सेपाही : बिलकुल। नहीं तो चलो थाने।

आदमी : पर उस औरत से तो पूछ देखो।

सिपाही : औरत से क्या पूछो जी? हमने अपनी आंखों से इसे पटाते देखा है।
चलो थाने। (दोनों सिपाही फिर उसका हाथ पकड़ कमर खींछने लगते हैं)|

लडका : और अगर मैं न जाऊ तो?

सिपाही : कैसे नहीं जायेगा? साले लौंडिया पटता है और बोलता है थाने नहीं जाऊंगा।

लडका : मगर आप गाली तो मत बको।

सिपाही : अच्छा, लौंडिया के सामने गाली खाने में शरम आय रही है। नखरे दिखायेगा तो साले मारने और लगेंगे।

लडका : अच्छी जबर्दस्ती है। बिट्टी, तू कुछ बोल।

औरत : बुरके के अंदर से : ए, छोड दो उसको।

सिपाही : अब आप चुप्पै रही बाई जी। ऐसन रामलील

हम बहुत देखे हैं।

आदमी : यार, उस शरीफ औरत से बदतमीजी मत करो।

सिपाही : देखी सरीफ औरत भाई जी। शरीफ औरत होती तो यहां सुनसान सडक के कोने में यार से मिलने न आती।

औरत : हद है बदतमीजी की। (कुछ निश्चय के-से स्वर में) अच्छा चलो। थाने ही चलो।

सिपाही : एक नजर औरत पर, फिर एक नजर लडके पर, फिर एक नजर तीसरे आदमी पर डालता है। फिर साथी की ओर देखता हुआ स्वर में पर्याप्त व्यंग्य का पुट दे कर बोलता है : बहुत मुश्किल पड जायेगी बाई साहब, एक बार और सोचा लो।

लडका : चलो ना थाने ही चलते हैं।

सिपाही : और कभी गये हो लल्ला।

लडका : जी नहीं।

सिपाही : तभी हुलहुलाय रहे हो। अगर एक बार भी आये होते तो कभी ना कहते कि थाने चलो।

लडका : पर तुम जब छोडने को तैयार ही नहीं तो फिर वहीं चलो।

सिपाही : बहुत कठिनाई में फंस जाओगे बाबू। चौबीस घंटे बंद रखेंगे। सुंटाई पडेगी सो अलग। बाई जी का न जाने क्या हाल हो?

आदमी : भाई, आप लोग चाहते क्या हो आखिर? अब वो जाने को तैयार नहीं था तो आप लोग उसे खेंचे डाल रहे थे। अब वो खुद ही कह रहा है तो ले नही जा रहे।

सिपाही : भाई साहब, हम भी आदमी है। वहां जाने पर इन लोगों की खामोखां दुर्गति हो जायेगी।

आदमी : पर ले जाओ ना- जब वो खुद ही कह रहे हैं।

सिपाही : (व्यंग्य से) ऐसा क्या।

आदमी : और नहीं तो क्या?

सिपाहीं : अच्छा तो चलो। आप भी चलो।

आदमी : मैं! मेरा वहां क्या काम?

सिपाही : गवाह लगेगा ना।

आदमी : काहे का गवाह?

सिपाही : यही कि यह लडका आपके सामने इस औरत

पटा रहा था।

आदमी : पर मेरे सामने तो कुछ नहीं हुआ!

सिपाही : अरे वाह! इतना सब कुछ आपके सामने हुआ। आप कैसे इनकार कर सकते है?

आदमी : अगर मैं गवाह न बनना चाहू तो?

सिपाही : यह देखन हमार काम है। आप पहले थाने तो चलिए।

आदमी : और ना चलूं तो?

सिपाही : सीधे से न चलेंगे तो टेढे से ले चलेंगे।

आदमी : अच्छे फंसे!

सिपाही : आपको बोलना ही नहीं था। चुपचाप अपने रास्ते निकल जाते।

आदमी : आखिर आप लोग चाहते क्या हैं?

सिपाही : कुछ नहीं, यह सिद्ध कर दें कि यह इसकी बीवी है, हम छोड देंगे।

आदमी : वो कह तो रहा है।

सिपाही : उसका कहना नहीं मानेंगे। मुलजिम क कहना अदालत भी नहीं मानती।

आदमी : तो औरत से पुछवाये देते हैं।

सिपाही : वो यार को छुडाने के लिए झूठ भी बोल सकती है। उसका कहना भी नहीं मानेंगें।

आदमी : तो मेरा कहना तो आप लोग मानोगे नहीं?

सिपाही : हरगिज नहीं।

आदमी : बडी विकट समस्या है।

सिपाही : समस्या तो है।

आदमी : कैसे हल हो?

सिपाही : आप जानो। हमने तो कह दिया कि यह सिद्ध कर दे कि इसकी औरत हैं तो छोड देंगे।

(एक चौथा आदमी उधर से गुजरता है। मामला देखकर रूक जाता है।

आदमी 4 : क्या बात है भाई?

आदमी 3 : समस्या है।

आदमी 4 : क्या समस्या है?

आदमी 3 : यह सिद्ध करना है कि यह बुरकेवाली औरत और यह लडका पति-पत्नी हैं।

आदमी 4 : ऐसी कौन सी जरूरत आ गयी।

आदमी 3 : **सिपाहियों की ओर इशारा करके :** इसलिए कि ये चाहते हैं।

आदमी 4 : तो सिद्ध कर दो।

आदमी 3 : कैसे सिद्ध कर दो?

आदमी 4 : दे दो दो-चार रूपये और सिद्ध कर दो।

आदमी 3 : रूपये से कैसे सिद्ध होगा?

आदमी 4 : अजब आदमी हो। बडे से बडे रिश्ते रूपयों से सिद्ध हो जाते है। तुम कहते हो रूपये से कैसे सिद्ध होगा! लोग अपने को पति-पत्नी सिद्ध करने के लिए शादी में हजारों खर्च नहीं करते क्या?

आदमी 3 : मगर .....

आदमी 4 : मगर-वगर कुछ नहीं। हाजारों के बजाय दो-चार में काम चलता हैं तो चला क्यों नहीं लेते?

लडका : मगर हम लोग कोई गलत काम तो नहीं कर रहे थे।

आदमी 4 : गलत और सही की अपनी-अपनी व्याख्याएं हुआ करती भैया। असल दारोमदार सिद्ध करने पर है। सही काम को गलत सिद्ध कर दो तो गलत हो जाता है और गलत

काम को सही सिद्ध कर दो तो सही हो जाता है। इसलिए गलत-सही के चक्कर में मत पडो। देदो- चार रूपये और सिद्ध कर दो। निकालो .....

सिपाही : ऐसे नहीं मानेंगे।

आदमी 4 : अच्छा छह दे दो।

सिपाही : ऊं हूं।

आदमी 4 : यार ले लो यह रूपये और मान जाओ। चलो भाई-बहन ही
मान लो और जाने दो।

सिपाही : ऊं हूं। भाई-बहन नहीं मानेंगे। लडका अपने मुंह से इसे औरत कह चुका है।

आदमी 4 : हूं, तो आदमी- औरत ही मनवाना पडेगा। अच्छा चलो, दस ले लो।

लडका : पर दस रूपये तो मेरे पास नहीं हैं।

आदमी 4 : देखो पार्ट्नर, झंझट से उबरना हैं तो ज्यादा हुज्जत मत करो। कितने रूपये हैं तुम्हारे पास?

लडका : (जेब टटोलते हुए) पांच रूपये है।

आदमी 4 : तो पांच से ले लो। (औरत के पास जाकर) ला बाई पांच तू दे दे। अरे हां! पति-पत्नी एक दूसरे के लिए खर्च करते ही हैं।

औरत :(बटुआ खखोड कर निकालते हुए) तीन ही हैं।

आदमी 4 : ला तीन ही ला! (आदमी नं. 3 के पास जाकर) लाओ पार्ट्नर दो रूपये तुम दो।

आदमी 3 : मैं! काहे को दूं?

आदमी 4 : तुम खडे थे ना यहीं पर?

आदमी 3 : तो खडे रहने से क्या? खडे रहना कोई अपराध नहीं हैं?

आदमी 4 : वार्दात की जगह खडे रहना बहुत अपराध है भैया। थाने जाओगे तब पता लगेगा। दो रूपये में बहुत सस्ते छूट रहे हो। लाओ निकालो (जबरन जेब में हाथ डालकर रूपया निकाल लेता है और दस पूरे करके सिपाही की जेब में रख देता है) लो मुंशीजी, अब भी कम पड रहे हों तो दोनों को मंगेतर मान लो और जाने दो। मंगेतरों का सडक पर मिलना-जुलना, बैठना-बतियाना कोई अपराध नहीं हैं .....जै

राम जी की!

दोनों सिपाही घटनास्थल से रवाना हो जाते है।

आदमी 3 : अच्छा लुटवाया! भैया, तू है कौन?

आदमी 4 : एक व्यावहारिक आदमी। (मुस्करा कर कहता है और आगे बढ जाता है।) लडका और लडकी भी, लडका जिस ओर से आया था उस ओर तथा लडकी जिस ओर से आयी थी उस ओर निकल जाते हैं। आदमी नं. 3 थोडी देर हक्का बक्का-सा वहीं खडा रहता है फिर सर झुका कर, कुछ सोचता हुआ-सा एक ओर को बढ जाता हैं।

*****

टार्च बेचनेवाले (व्यंग्य)

-हरिशंकर परसाई

लेखक परिचयः- हरिशंकर परसाई (22 अगस्त 1924 - 10 अगस्त 1995) का जन्म जमानी, होशंगाबाद, मध्यप्रदेश में हुआ था। हिंदी के प्रसिद्ध लेखक और व्यंगकार थे। वे हिंदी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परंपरागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। 18 वर्ष की उम्र में वन विभाग में नौकरी की। खंडवा में 7 महीने अध्यापन किया। दो वर्ष (1941-43) जबलपुर में स्पेस ट्रेनिंग कॉलेज में शिक्षण की उपाधि ली। 1942 में उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ी। 1943 से 1947 तक प्राइवेट स्कूलों में नौकरी।

1947 में नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र लेखन की शुरूआत की। जबलपुर से 'वसुधा' नाम की साहित्यिक मासिकी निकाली, नई दुनिया में 'सुनो भइ साधो', नयी कहानियों में 'पाँचवाँ कालम' और 'उलझी-उलझी' तथा कल्पना में 'और अन्त में'

इत्यादि कहानियाँ, उपन्यास एवं निबन्ध-लेखन के बावजूद मुख्यत: व्यंग्यकार के रूप में विख्यात है।

सामाजिक पाखंड और रूढ़िवादी जीवन-मूल्यों पर अपनी अलग कोटिवार पहचान है। उन्होंने सदैव विवेक और विज्ञान-सम्मत दृष्टि को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा-शैली में खास किस्म का अपनापन महसूस होता है कि लेखक उसके सामने ही बैठे हैं।

***

वह पहले चौराहों पर बिजली के टार्च बेचा करता था। बीच में कुछ दिन वह नहीं दिखा। कल फिर दिखा। मगर इस बार उसने दाढी बढा ली थी और लंबा कुरता पहन रखा था।

मैंने पूछा, "कहाँ रहे? और यह दाढी क्यों बढा रखी है?"

उसने जवाब दिया, "बाहर गया था।"

दाढीवाले सवाल का उसने जवाब यह दिया कि दाढी पर हाथ फेरने लगा। मैंने कहा, "आज तुम टार्च नहीं बेच रहे हो?"

उसने कहा, "वह काम बंद कर दिया। अब तो आत्मा के भीतर टार्च जल उठा है। ये 'सूरजछाप' टार्च अब व्यर्थ मालूम होते हैं।"

मैंने कहा, "तुम शायद संन्यास ले रहे हो। जिसकी आत्मा में प्रकाश फैल जाता है, वह इसी तरह हरामखोरी पर उतर आता है। किससे दीक्षा ले आए?"
मेरी बात से उसे पीडा हुई। उसने कहा, "ऐसे कठोर वचन मत बोलिए। आत्मा सबकी एक है। मेरी आत्मा को चोट पहुँचाकर आप अपनी ही आत्मा को घायल कर रहे हैं।"

मैंने कहा, ''यह सब तो ठीक है। मगर यह बताओ कि तुम एकाएक ऐसे कैसे हो गए? क्या बीवी ने तुम्हें त्याग दिया? क्या उधार मिलना बंद हो गया? क्या हूकारों ने ज्यादा तंग करना शुरू कर दिया? क्या चोरी के मामले में फँस गए हो? आखिर बाहर का टार्च भीतर आत्मा में कैसे घुस गया?''

उसने कहा, ''आपके सब अंदाज गलत हैं। ऐसा कुछ नहीं हुआ। एक घटना हो गई है, जिसने जीवन बदल दिया। उसे मैं गुप्त रखना चाहता हूँ। पर क्योंकि मैं आज ही यहाँ से दूर जा रहा हूँ,

इसलिए आपको सारा किस्सा सुना देता हूँ।'' उसने बयान शुरू किया पाँच साल पहले की बात है। मैं अपने एक दोस्त के साथ हताश एक जगह बैठा था। हमारे सामने आसमान को छूता हुआ एक सवाल खड़ा था। वह सवाल था - 'पैसा कैसे पैदा करें?' हम दोनों ने उस सवाल की एक-एक टाँग पकड़ी और उसे हटाने की कोशिश करने लगे। हमें पसीना आ गया, पर सवाल हिला भी नहीं। दोस्त ने कहा - ''यार, इस सवाल के पाँव जमीन में गहरे गड़े हैं। यह उखडेगा नहीं। इसे टाल जाएँ।''

हमने दूसरी तरफ मुँह कर लिया। पर वह सवाल फिर हमारे सामने आकर खडा हो गया। तब मैंने कहा - "यार, यह सवाल टलेगा नहीं। चलो, इसे हल ही कर दें। पैसा पैदा करने के लिए कुछ काम- धंधा करें। हम इसी वक्त अलग- अलग दिशाओं में अपनी- अपनी किस्मत आजमाने निकल पड़े। पाँच साल बाद ठीक इसी तारीख को इसी वक्त हम यहाँ मिलें।"

दोस्त ने कहा - "यार, साथ ही क्यों न चलें?"

मैंने कहा - "नहीं। किस्मत आजमानेवालों की जितनी पुरानी कथाएँ मैंने पढ़ी हैं, सबमें वे अलग अलग दिशा में जाते हैं। साथ जाने में किस्मतों के टकराकर टूटने का डर रहता है।"

तो साहब, हम अलग-अलग चल पडे। मैंने टार्च बेचने का धंधा शुरू कर दिया। चौराहे पर या मैदान में लोगों को इकु कर लेता और बहुत नाटकीय ढंग से कहता- "आजकल सब जगह अँधेरा छाया रहता है। रातें बेहद काली होती हैं। अपना ही हाथ नहीं सूझता। आदमी को रास्ता नहीं दिखता। वह भटक जाता है। उसके पाँव काँटों से बिंध जाते हैं, वह गिरता है और उसके घुटने लहूलुहान हो जाते हैं। उसके आसपास भयानक अँधेरा है। शेर और चीते चारों तरफ धूम रहे हैं, साँप जमीन पर रेंग रहे हैं। अँधेरा सबको निगल रहा है। अँधेरा घर में भी है। आदमी रात को पेशाब करने उठता है और साँप पर उसका पाँव पड़ जाता है। साँप उसे डँस लेता है और वह मर जाता है। "आपने तो देखा ही है साहब, कि लोग मेरी बातें सुनकर कैसे डर जाते थे। भरदोपहर में वे अँधेरे के डर

से काँपने लगते थे। आदमी को डराना कितना आसान है!

लोग डर जाते, तब मैं कहता - "भाइयों, यह सही है कि अँधेरा है, मगर प्रकाश भी है। वही प्रकाश मैं आपको देने आया हूँ। हमारी 'सूरज छाप' टार्च में वह प्रकाश है, जो अंधकार को दूर भगा देता है। इसी वक्त 'सूरज छाप' टार्च खरीदो और अँधेरे को दूर करो। जिन भाइयों को चाहिए, हाथ ऊँचा करें।"

साहब, मेरे टार्च बिक जाते और मैं मजे में जिंदगी गुजरने लगा।

वायदे के मुताबिक ठीक पाँच साल बाद मैं उस जगह पहुँचा, जहाँ मुझे दोस्त से मिलना था। वहाँ दिन भर मैंने उसकी राह देखी, वह नहीं आया। क्या हुआ? क्या वह भूल गया? या अब वह इस असार संसार में ही नहीं है? मैं उसे ढूंढ़ने निकल पडा।
एक शाम जब मैं एक शहर की सडक पर चला जा रहा था, मैंने देखा कि पास के मैदान में खुब रोशनी है और

एक तरफ मंच सजा है। लाउडस्पीकर लगे हैं। मैदान में हजारों नर-नारी श्रद्धा से झुके बैठे हैं। मंच पर सुंदर रेशमी वस्त्रों से सजे एक भव्य पुरुष बैठे हैं। वे खूब पुष्ट हैं, सँवारी हुई लंबी दाढी है और पीठ पर लहराते लंबे केश हैं।

मैं भीड के एक कोने में जाकर बैठ गया।

भव्य पुरुष फिल्मों के संत लग रहे थे। उन्होंने गुरुगंभीर वाणी में प्रवचन शुरू किया। वे इस तरह बोल रहे थे जैसे आकाश के किसी कोने से कोई रहस्यमय संदेश उनके कान में सुनाई पड़ रहा है जिसे वे भाषण दे रहे हैं।

वे कह रहे थे - "मैं आज मनुष्य को एक घने अंधकार में देख रहा हूँ। उसके भीतर कुछ बुझ गया है। यह युग ही अंधकारमय है। यह सर्वग्राही अंधकार संपूर्ण विश्व को अपने उदर में छिपाए है। आज मनुष्य इस अंधकार से घबरा उठा है। वह पथभ्रष्ट हो गया है। आज आत्मा में भी अंधकार है। अंतर की आँखें ज्योतिहीन हो गई हैं। वे उसे भेद नहीं पातीं। मानव- आत्मा अंधकार में घुटती है।

मैं देख रहा हूँ, मनुष्य की आत्मा भय और पीड़ा से त्रस्त है।"

इसी तरह वे बोलते गए और लोग स्तब्ध सुनते गए।

मुझे हँसी छूट रही थी। एकदो बार दबाते-दबाते भी हँसी फूट गई और पास के श्रोताओं ने मुझे डाँटा।

भव्य पुरुष प्रवचन के अंत पर पहुँचते हुए कहने लगे- "भाइयों और बहनों, डरो मत। जहाँ अंधकार है, वहीं प्रकाश है। अंधकार में प्रकाश की किरण है, जैसे प्रकाश में अंधकार की किंचित कालिमा है। प्रकाश भी है। प्रकाश बाहर नहीं है, उसे अंतर में खोजो। अंतर में बुझी उस ज्योति को जगाओ। मैं तुम सबका उस ज्योति को जगाने के लिए आह्वान करता हूँ। मैं तुम्हारे भीतर वही शाश्वत ज्योति को जगाना चाहता हूँ। हमारे 'साधना मंदिर' में आकर उस ज्योति को अपने भीतर जगाओ। "साहब, अब तो मैं खिलखिलाकर हँस पडा। पास के लोगों ने मुझे धक्का देकर भगा दिया। मैं मंच के पास जाकर खडा हो गया।

भव्य पुरुष मंच से उतरकर कार पर चढ रहे थे। मैंने उन्हें ध्यान से पास से देखा। उनकी दाढी बढी हुई थी, इसलिए मैं थोडा झिझका। पर मेरी तो दाढी नहीं थी। मैं तो उसी मौलिक रूप में था। उन्होंने मुझे पहचान लिया। बोले- "अरे तुम! "मैं पहचानकर बोलने ही वाला था कि उन्होंने मुझे हाथ पकड़कर कार में बिठा लिया। मैं फिर कुछ बोलने लगा तो उन्होंने कहा- "बँगले तक कोई बातचीत नहीं होगी। वहीं ज्ञानचर्चा होगी।"

मुझे याद आ गया कि वहाँ ड्राइवर है।

बँगले पर पहुँचकर मैंने उसका ठाठ देखा। उस वैभव को देखकर मैं थोडा झिझका, पर तुरंत ही मैंने अपने उस दोस्त से खुलकर बातें शुरू कर दीं।

मैंने कहा- "यार, तू तो बिलकुल बदल गया।"

उसने गंभीरता से कहा- "परिवर्तन जीवन का अनंत क्रम है।"

मैंने कहा- "साले, फिलासफी मत बघार यह बता कि तूने इतनी दौलत कैसे कमा ली पाँच सालों में?"

उसने पूछा- "तुम इन सालों में क्या करते रहे?"

मैंने कहा "मैं तो धूममूमकर टार्च बेचता रहा। सच बता, क्या तू भी टार्च का व्यापारी है?"

उसने कहा- "तुझे क्या ऐसा ही लगता है? क्यों लगता है?"

मैंने उसे बताया कि जो बातें मैं कहता हूँ; वही तू कह रहा था मैं सीधे ढंग से कहता हूँ, तू उन्हीं बातों को रहस्यमय ढंग से कहता है। अँधेरे का डर दिखाकर लोगों को टार्च बेचता हूँ। तू भी अभी लोगों को अँधेरे का डर दिखा रहा था, तू भी जरूर टार्च बेचता है।

उसने कहा- "तुम मुझे नहीं जानते, मैं टार्च क्यों बेचूंगा! मैं साधु, दार्शनिक और संत कहलाता हूँ।"

मैंने कहा "तुम कुछ भी कहलाओ, बेचते तुम टार्च हो। तुम्हारे और मेरे प्रवचन एक जैसे हैं। चाहे कोई दार्शनिक बने, संत बने या साधु बने, अगर वह लोगों को अँधेरे का डर दिखाता है, तो जरूर अपनी कंपनी का टार्च बेचना चाहता है। तुम जैसे लोगों के लिए हमेशा ही अंधकार छाया रहता है। बताओ, तुम्हारे जैसे किसी आदमी ने हजारों में कभी भी यह कहा है कि आज दुनिया में प्रकाश फैला है? कभी नहीं कहा। क्यों? इसलिए कि उन्हें अपनी कंपनी का टार्च बेचना है। मैं खुद भरदोपहर में लोगों से कहता हूँ कि अंधकार छाया है। बता किस कंपनी का टार्च बेचता है?"

मेरी बातों ने उसे ठिकाने पर ला दिया था। उसने सहज ढंग से कहा - "तेरी बात ठीक ही है। मेरी कंपनी नयी नहीं है, सनातन है।" मैंने पूछा- "कहाँ है तेरी दुकान? नमूने के लिए एकाध टार्च तो दिखा। 'सूरज छाप' टार्च से बहुत ज्यादा बिक्री है उसकी।

उसने कहा- "उस टार्च की कोई दुकान बाजार में नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है। मगर कीमत उसकी बहुत मिल जाती है। तू एक-दो दिन रह, तो मैं तुझे सब समझा देता हूँ।"

"तो साहब मैं दो दिन उसके पास रहा। तीसरे दिन 'सूरज छाप' टार्च की पेटी को नदी में फेंककर नया काम शुरू कर दिया"

वह अपनी दाढी पर हाथ फेरने लगा। बोला- "बस, एक महीने की देर और है। "मैंने पूछा- 'तो अब कौन-सा धंधा करोगे?"

उसने कहा- "धंधा वही करूँगा, यानी टार्च बेचूँगा। बस कंपनी बदल रहा हूँ।"

*****

गिल्लू (रेखाचित्र)

-महादेवी वर्मा

लेखिका का परिचयः- महादेवी वर्मा (26 मार्च 1907 – 11 सितम्बर 1987) आधुनिक हिन्दी कविता की छायावादी धारा की सर्वश्रेष्ठ कवियित्रि के रूप में विख्यात हैं। नारी सहज कोमलता, करुणा तथा मधुरता के कारण उनकी कविताएं अत्यंत प्रभावशाली बन गयी। नीहार, रश्मी, सान्ध्यगीत और दिपशिखा उनकी मशहुर काव्य रचनाएं हैं।

महादेवीजी उच्चकिटि की गध्य- लेखिका है। अधिकांश गध्य रचनाएं संस्मराणात्मक हैं- अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं, श्रुंखला की कडियां आदि उनकी प्रदिद्ध गद्य कृतियाँ हैं। 'गिल्लू' नामक लघुचित्र उनके 'मेरा परिवार' नामक संकलन से लिया गया है।

गिल्लू' शीर्षक संस्मरण में लेखिका ने एक गिलहरी को मानावीय संवेदना के व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। इसमें कथात्मकता तथा चित्रात्मकता का सौन्दर्य दिखाई

पडता हैं। गिल्लू जीवन का यह स्मरण-चित्र अत्यन्त प्रभावपूर्ण हो उठा है।

***

सोनजुही में आज एक पीली कली लगी है। उसे देखकर अनायास ही उस छोटे जीव का स्मरण हो आया, जो इस लता की सघन हरीतिमा में छिपकर बैठता था और फिर मेरे निकट पहुँचते ही कन्धे पर कूदकर मुझे चौंका देता था। तब मुझे कली की खोज रहती थी, पर आज उस लघुप्राणी की खोज है।

परन्तु वह तो अब तक इस सोनजुही की जड़ में मिट्टी होकर मिल गया होगा कौन जाने स्वर्णिम कली के बहाने वही मुझे चौंकाने उपर आ गया हो।

अचानक एक दिन सवेरे कमरे के बरामदे में आकर मैंने देखा, दो कौए एक गमले के चारों ओर चोंचों से छुवा-छुवौवल जैसा खेल खेल रहे हैं। यह कागभुशुण्डि भी विचित्र पक्षी है-एक साथ समादरित, अनादरित, अति सम्मानित, अति अवमानित।

हमारे बेचारे पुरखे न गरुड़ के रुप में आ सकते हैं, न मयूर के, न हंस के। उन्हें पितरपक्ष में हमसे कुछ पाने के लिए काक बनकर ही अवतीर्ण होना पड़ता है। इतना ही नहीं, हमारे दूरस्थ प्रियजनों को भी अपने आने का मधु सन्देश इनके कर्कश स्वर ही में देना पड़ता है। दूसरी ओर हम कौआ और काँव-काँव करने की अवमानना के अर्थ में ही प्रयुक्त करते हैं।

मेरे काकपुराण के विवेचन में अचानक बाधा आ पड़ी, क्योंकि गमले और दीवार की सन्धि में छिपे एक छोटे-से जीव पर मेरी दृष्टि रुक गयी। निकट जाकर देखा, गिलहरी का छोटा-सा बच्चा है, जो सम्भवतः घोंसले से गिर पड़ा है और अब कौए जिसमें सुलभ आहार खोज रहें हैं।

काकद्वय की चोंचों के दो घाव उस लघुप्राण के लिए बहुत थे। अतः वह निश्चेष्ट-सा गमले में चिपटा पड़ा था।

सबने कहा कि कौए की चोंच का घाव लगने के बाद यह बच नहीं सकता, अतः इसे ऐसे ही रहने दिया जाय।

परन्तु मन नहीं माना, उसे हौले से उठाकर अपने कमरे में ले आयी, फिर रूई से रक्त पोंछकर घावों पर पेन्सिलीन का मरहम लगाया।

रूई की पतली बत्ती दूध में भिगोकर जैसे-तैसे उसके नन्हें-से मुँह में लगायी, पर मुँह खुल न सका और दूध की बूँदें दोनो ओर लुढ़क गयीं।

कई घण्टे के उपचार के उपरान्त उसके मुँह में एक बूँद पानी टपकाया जा सका। तीसरे दिन वह इतना अच्छा और आश्वस्त हो गया कि मेरी उँगली अपने दो नन्हें पंजों से पकड़कर, नीले काँच की मोतियों-जैसी आँखों से इधर-उधर देखने लगा।

तीन-चार मास में उसके स्निग्ध रोंएँ, झब्बेदार पूँछ और चंचल चमकीली आँखें सबको विस्मित करने लगीं।

हमने इसकी जातिवाचक संज्ञा को व्यक्तिवाचक का रूप दे दिया और इस प्रकार हम उसे "गिल्लू" कहकर बुलाने लगे। मैंने फूल रखने की एक हल्की डलिया में रूई बिछाकर उसे तार से खिड़की पर लटका दिया।

वही दो वर्ष "गिल्लू" का घर रहा। वह स्वंय हिलाकर अपने घर में झुलता और अपनी काँच के मनकों-सी आंखों से कमरे के भीतर और खिड़की से बाहर न जाने क्या देखता-समझता रहता था, परन्तु समझदारी और कार्यकलाप पर सबको आश्चर्य होता था।

जब मैं लिखने बैठती तब अपनी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने की उसे इतनी तीव्र इच्छा होती थी उसने एक अच्छा उपाय खोज निकाला।

वह मेरे पैर तक आकर सर्र से परदे पर चढ़ जाता और फिर उसी तेजी से उतरता। उसका यह दौड़ने का क्रम तब तक चलता, जब तक मैं उसे पकड़ने के लिए न उठती।

कभी मैं "गिल्लू" को पकड़कर एक लम्बे लिफाफे में इस प्रकार रख देती कि अगले दो पंजे और सिर के अतिरिक्त सारा लघु गात लिफाफे के भीतर बन्द रहता। इस अद्‌भुत स्थिति में कभी-कभी घण्टों मेज पर दीवार के सहारे खड़ा रहकर वह अपनी चमकीली आँखों से मेरा कार्यकलाप देखा करता।

भूख लगने पर चिक-चिक करके मानो वह मुझे सूचना देता है और काजू या बिस्कुट मिल जाने पर उसी स्थिति में लिफाफे से बाहर वाले पंजों से पकड़कर उसे कुतरता रहता।

फिर "गिल्लू" के जीवन का प्रथम वसन्त आया। नीम-चमेली की गन्ध मेरे कमरे में हौले-हौले आने लगी। बाहर की गिलहरियाँ खिड़की की जाली के पास आकर चिक-चिक करके न जाने क्या कहने लगीं।

"गिल्लू" को जाली के पास बैठकर अपनेपन से बाहर झाँकते देखकर मुझे लगा कि इसे मुक्त करना आवश्यक है।

मैंने कीलें निकालकर जाली का एक कोना खोल दिया और इस मार्ग गिल्लू ने बाहर जाने पर सचमुच मुक्ति की साँस ली। इतने छोटे जीव को घर में पले कुत्ते और बिल्लियों से बचाना भी एक समस्या ही थी।

आवश्यक कागज-पत्रों के कारण मेरे बाहर जाने के बाद कमरा बन्द ही रहता है। मेरे कॉलेज से लौटने पर जैसे ही कमरा खोला गया और मैंने भीतर पैर रखा, वैसे ही "गिल्लू" जाली के द्वार से भीतर आकर मेरे पैर सिर और सिर से पैर तक दौड़ लगाने लगा। तब से यह नित्य का क्रम हो गया।

मेरे कमरे से बाहर जाने पर "गिल्लू" भी खिड़की की खुली जाली की राह बाहर चला जाता और दिनभर गिलहरियों के झुण्ड का नेता बना, हर डाल पर उछलता-कूदता रहता और ठीक चार बचे वह खिड़की से भीतर आकर अपने झूले में झूलने लगता।

मुझे चौंकाने की इच्छा उसमें न जाने कब और कैसे उत्पन्न हो गयी थी। कभी फूलदान के फूलों में छिप

जाता, कभी परदे की चुन्नट में और कभी सोनजुही की पत्तियों में।

मेरे पास बहुत से पशु-पक्षी हैं और उनका मुझसे लगाव भी कम नहीं है, परन्तु उनमें से किसी को मेरे साथ थाल में खाने की हिम्मत नहीं हुई है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता।

"गिल्लू" इनमें अपवाद था। मैं जैसे ही खाने के कमरे में पहुँचती, वह खिड़की से निकलकर आँगन की दीवार, बरामदा पार करके मेज पर पहुँच जाता और मेरी थाली में बैठ जाना चाहता। बड़ी कठिनाई से मैंने उसे थाल के पास बैठना सिखाया, जहाँ बैठकर वह मेरी थाली में से एक-एक चावल उठाकर बड़ी सफाई से खाता रहता। काजू उसका प्रिय खाद्य था और कई दिन काजू न मिलने पर वह अन्य खाने की चीजें या तो लेना बन्द कर देता था या झूले के नीचे फेंक देता था।

उसी बीच मुझे मोटर दुर्घटना में आहत होकर कुछ दिन अस्पताल में रहना पड़ा। उन दिनों जब मेरे कमरे का

दरवाजा खोला जाता, "गिल्लू" अपने झूले से उतरकर दौड़ता और फिर किसी दूसरे को देखकर उसी तेजी से अपने घोंसले में जा बैठता। सब उसे काजू दे जाते, परन्तु अस्पताल से लौटकर जब मैंने उसके झूले की सफाई की तो उसमें काजू भरे मिले, जिनसे ज्ञात हुआ वह उन दिनों अपना प्रिय खाद्य कम खाता रहा।

मेरी अस्वस्थता में वह तकिये पर सिरहाने बैठकर अपने नन्हें-नन्हें पंजों से ये मेरे सिर और बालों को इतने हौले-हौले सहलाता रहता कि उसका हटना एक परिचारिका के हटने के समान लगता।

गर्मियों में जब मैं दोपहर में काम करती तो "गिल्लू" न बाहर जाता, न अपने झूले में बैठता। उसने मेरे निकट रहने के साथ गर्मी से बचने का एक सर्वथा नया उपाय खोज निकाला। वह मेरे पास रखी सुराही पर लेट जाता और इस प्रकार समीप भी रहता और ठण्डक में भी।

गिलहरियों के जीवन की अवधि दो वर्ष से अधिक नहीं होती, अतः "गिल्लू" की जीवन-यात्रा का अन्त आ ही गया। दिनभर

उसने न कुछ खाया और न बाहर गया। रात में अन्त की यातना में भी वह अपने झूले से उतरकर मेरे बिस्तर पर आया और ठण्डे पंजो से मेरी वही उँगली पकड़कर हाथ से चिपक गया, जिसे उसने अपने बचपन की मरणासन्न स्थिति में पकड़ा था। पंजे इतने ठण्डे हो रहे थे कि मैंने जाकर हीटर जलाया और उसे उष्णता देने का प्रयास किया, परन्तु प्रभात की प्रथम किरण के स्पर्श के साथ ही वह किसी और जीवन में जागने के लिए सो गया।

उसका झूला अतारकर रख दिया है और खिड़की की जाली बन्द कर दी गयी है, परन्तु गिलहरियों की नई पीढ़ी जाली के उस पार चिक-चिक करती ही रहती है और सोनजुही पर वसन्त आता ही रहता है।

सोनजुही की लता के नीचे "गिल्लू" को समाधि दी गयी-इसलिए भी कि उसे वह लता सबसे अधिक प्रिय थी-इसलिए भी कि लघुगात का, किसी वासन्ती दिन, जुही के पीलाभ फूल में खिल जाने का विश्वास मुझे सन्तोष देता है।

*****

मानव और विज्ञान (वैज्ञानिक लेख)

-प्रो.जी सुन्दर रेड्डी

लेखक परिचय:- प्रो.जी. सुन्दर रेड्डी का जन्म वर्ष 1919 में आन्ध्र प्रदेश में हुआ था। इनकी आरम्भिक _शिक्षा संस्कृत एवं तेलुगू भाषा में हुई व उच्च _शिक्षा हिन्दी में। श्रेष्ठ विचारक, समालोचक एवं उत्कृष्ट निबन्धकार प्रो. जी. सुन्दर रेड्डी लगभग 30 वर्षों तक आन्ध्र विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे। इन्होंने हिन्दी और तेलुगू साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर पर्याप्त काम किया। 30 मार्च, 2005 में इनका स्वर्गवास हो गया।

श्रेष्ठ विचारक, सजग समालोचक, सशक्त निबन्धकार, हिन्दी और दक्षिण की भाषाओं में मैत्री-भाव के लिए प्रयत्नशील, मानवतावादी दृष्टिकोण के पक्षपाती प्रोफेसर जी. सुन्दर रेड्डी का व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। ये हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित है। आन्ध्र विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसन्धान विभाग में हिन्दी और तेलुगू साहित्यों के विविध प्रश्नों पर इन्होंने तुलनात्मक अध्ययन

और शोधकार्य किया है। इन्होंने दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आपने अनेक ग्रंथ लिखे है जिनमें 'मेरे विचार' बहुत महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत निबंध इसी पुस्तक से लिया गया है।

***

आधुनिक युग विज्ञान क युग है। मानव विज्ञान के द्वारा प्रकृति के गर्भ में जो जो महत्वपूर्ण बातें व विषय है उन्हें जानने में समर्थ होता जा रहा है। प्रकृति की सारी विभूतियां मानव की भौतिक-उन्नति के लिए सहायक बनती जा रही है। जब पहले मानव की सृष्टि हुई थी और जंगलों एवं पहाडों में भटकता हुआ जीवन बिताता था उस समय की उसकी दशा और आज की उसकी दशा से तुलना करके देखें तो भेद स्पष्टतया देखाई पडता है। मानव की इस महोन्नती के मूल में जो तत्व या शक्ति है वह विज्ञान है। ज्यों ज्यों मानव का विकास होता जाता है- उसकी बुद्धी भी बढती जाती है, सोचने और विचारने की शक्ति की भी वद्धि होती

जाती है। अपने जीवन को ज्यादा से ज्यादा सुखमय बनाने का प्रयत्न भी वह नित्य करने लगता है। प्रकृति के गर्भ में जो रहस्य गर्भित है उन्हें समझने और उनसे अपने जीवन को अधिक सुखमय बनाने की धुन में लग जाता है। मानव के इसी प्रयत्न या धुन के कारण आज विज्ञान के क्षेत्र में इतनी प्रगती हुई है। एक बार विज्ञान के साधन और उनसे भौतिक-उन्नती पर नजर डालें हमें आश्चर्यान्वित होना पडेगा।

मनुष्य आदिम काल में जब जंगली-जीवन व्यतीत करता था तब उसे प्रकृति की हर चीज अदभुत या भयानक मालुम होती थी। अपनी आजीविका के लिये आवश्यक पदार्थों का संचय करना उसको मालुम न था। किन्तु वही मनुष्य आज अपने सुख के सभी पदार्थ प्रकृति से हस्तगत कर बैठा है। इसके पीछे विज्ञान का ही हाथ है।

आज के वैज्ञानिक अपने आविष्कारों से मानव की गति और दुनिया की गति को बदल रहे हैं। विज्ञान के द्वारा बडे बडे परिवर्तन-जिनकी कल्पना भी हम कुछ दिन के पहले नहीं कर सकते थे- हो रहे हैं। आज दुनिया का

स्वरूप ही बदलता जा रहा है। संक्षेप में, आज विज्ञान दुनिया का सर्वस्व बनता जा रहा है।

पहले आदमी का जीवन अपने गांव तक ही सीमित था। अपने प्रांत के, अपने देश के अन्य प्रांतों के और दुनिया के अन्य देशों के लोगों से उसका संबंध न था। क्योंकि संबंध स्थापित रखने के लिये उसके पास आवश्यक साधन न थे। किन्तु आज मानव का क्षेत्र सीमित नही है। अपने प्रांत और देश के दूसरे प्रांतों से ही नहीं दुनिया के सब देशों से उसका निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। अपने कुटुंब या गांव के अंदर ही उसका कार्य-क्षेत्र सीमित नहीं, सारे संसार में या समस्त भूमंडल में उसका कार्य-क्षेत्र व्याप्त है। समस्त भूमंडल आज उसके लिये अपना गांव-सा हो गया है। या दूसरे शब्दों में दुनिया के 250 करोड लोग एक ही परिवार के सदस्य जैसे बनते जा रहे है।

विज्ञान के द्वारा जो यातायात के साधन आविष्कार किये गये हैं, उनके द्वारा दुनिया के सभी देशों का हम आसानी से भ्रमण कर सकते है और परस्पर विचार-विनिमय कर

सकते हैं। इस प्रकार संसारा के मानवों को एक सूत्र में बांधने का कार्य विज्ञान ने ही सुसंपन्न किया है।

विज्ञान के द्वारा मानव-जीवन सुखमय बनता जा रहा है। प्रकृति की विभूतियां मानव को सुख पहुंचा रही है। भूगर्भ में जो जो पदार्थ छिपे पडे हैं वे मानवोपयोगी बन रहे हैं। कोयला, लोहा, तेल, सोना, चांदी वगैरह आज के सभ्य संसार के लिये बहुत ही आवश्यक वस्तुएं मानी जा रही है। खासकर कोयला, लोहा और तेल- इन तीनों की भित्ति पर ही आधुनिक सभ्यता का भवन बन रहा है। नये नये कार्खानों के लिये बडी बडी मशीनें आविष्कार की जा रही है - उनके लिये इन तीनों की बडी आवश्यकता है। बिजली को लीजिये, आधुनिक मानव-जीवन एक तरह से बिजली का ही जीवन है। आदमी ने बादलों के परस्पर संघर्ष के समय बिजली को चमकते देखा था। उसके मन में तरह तरह की आशाएं और आकांक्षाएँ पैदा हो गई थीं। तब वह अपने मस्तिष्क और विज्ञान की सहायता से जल में विद्युत या बिजली का उत्पादन करना सीखा लिया। आज बिजली के द्वारा ही हमारे बहुत-से काम हो

रहे हैं। उसके द्वारा मोटार, द्राम, रेल, जहाज, हवाई जहाज आदि चलाये जा रहे हैं। बडे-बडे कारखाने चल रहे है। तरह-तरह की मानवोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन उसी के सहारे हो रहा है।

विज्ञान के चमत्कारों में रेडियो, टेलिफोन; बेतार का तार और टेलिविजन मुख्य हैं। दुनिया के किसी भी कोने में अगर कोई छोटी घटना घटती है तो उसी वक्त सारी दुनिया को उसका पता लग जाता है। इन आविष्कारों के द्वारा संसार एक छोटा-सा गांव जैसा बनता जा रहा है। दुनिया के किसी भी कोने में और कितनी ही दूरी पर रहकर दो आदमी परस्पर बातचीत कर सकते हैं। दूर देशों में रहकर बोलनेवाले की आवाज ही नहीं उनकी सूरत को भी आंखों से देख सकते हैं।

विज्ञान के द्वारा मानव कीवन को अधिक स्वस्थ बनाने की भी कोशिश की जा रही है। कई प्रकार की भयंकर व्याधियों का निवारण किया जा रहा है। इतना ही नहीं मनुष्य को मृत्युंजयी बनाने क प्रयत्न भी किया जा रहा है। मृतक आदमी को जिलाने की कोशिश भी की जा रही

है। हम आशा कर सकते हैं कि निकट-भविष्य में आदमी इस प्रयत्न में भी सफल हो सकेगा।

मनुष्य विज्ञान के द्वारा अगम्य प्रदेशों का पता लगा रहा है। ध्रुव-प्रांत में जहां प्राणिमात्र के अस्तित्व के लिए अवकाश नहीं है, आज वैज्ञानिक उस प्रदेश के अन्वेषण में लगे हैं। इतना ही नहीं चन्द्रलोक और नक्षत्रलोकों के अन्वेषण के लिए, जोरों के साथ तैयारियां हो रही है। सुना जाता है कि योरोप के कई देशों में चन्द्रलोक की यात्रा के लिए अभी से टिकट बेच रहे हैं। राकेट जो नवीनतम आविश्कार है, इस यात्रा में सहायक हो रहा है। वह दिन जल्दी ही आनेवाला है कि जब हम लोग इस भू-खंड की यात्रा की तरह चन्द्रलोक और नक्षत्रलोक की यात्रा कर सकेंगे। यह सब विज्ञान से ही संभव हो रहा है।

विज्ञान का एक महत्वपूर्ण आविष्कार अणुशक्ति है। यह मानव जाति के लिए विज्ञान का वरदान है। इस अणुशक्ति के द्वारा आज तक जो असाध्य प्रतीत हो रहे थे - वे भी साध्य बन रहे हैं। महाभयंकर ओयाधियों

प्रतीत हो रहे है- वे भी साध्य बन रहे है । महाभयंकर व्यधियों का निर्मूलन हो रहा है। महशक्ति के द्वारा हिमालय जैसे अभेद्य और दुर्गम पर्वतमालाओं को बेध कर गमन के योग्य बना सकते है। हिमालय के बीच में से दूसरे खंडों को मिलाता हुआ रास्ता बनाया जा सकता है। अणुशक्ति के सहारे वहां रेल-गाडियां चलायी जा सकती है। यह कल्पना कोरी कल्पना नहीं है। सम्भव है कि निकट भविष्य में ही यह कल्पना यथार्थता का रूप धारण करे।

हां, अणुशक्ति के द्वारा कई अनर्थ भी हो सकते है और मानव कुल का सर्वनाश भी हो सकता है। हम अपने विज्ञान को लाभ और हानि, सुख और विनाश दोनों के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। हम जानते है कि पिछले महायुद्ध में जापान के हिरोशिमा पर जब अमेरिका ने अणु-बम डाला तो लाखों व्यक्ति मारे गये और वहां का प्रदेश वीरान बन गया। आज उससे भी भयानक उद्विग्न या हैड्रोजन बम का आविष्कार तेजी के साथ किया जा रहा है। वह भी मानव संहार को दृष्टि में रखकर! एक

बम के डालने से दुनिया के एक भूभाग का सर्वनाश किया जा सकता है। हजारों और लाखों सालों से मानव जाति की जिस सभ्यता और संस्कृति का विकास होता हुआ आ रहा है उसका अंत कुछ ही क्षणों में हो सकता है। मानव का अस्तित्व ही खतरे में पडकर सदा के लिए नाश हो सकता है।

आज ऐसी एक भयंकर स्थिति पर हमार विज्ञान खडा हुआ है कि या तो वह मानव-जाति का सदा के लिए सर्वनाश कर डालेगा या मानव-समाज की सुख-वृद्धि में उत्थान और प्रगति में मदद देगा। इसका निर्णय भविष्य ही कर सकता है। किंतु उस दुनिया को बनाना और मिटाना मनुष्य में है। आज वही मनुष्य इन मारण-यन्त्रों के खिलाफ दुनिया के कोने-कोने से एक कंठ से आवाज बुलंद कर रहा है। इसलिए वह दिन भी जल्दी आनेवाला है कि इस बुलंद आवाज के सामने इस भयंकर विनाशकारी अस्त्रों के प्रयोग करनेवालों को हार माननी पडेगी। तब अणु-शक्ति मानव-जीवन को सुखी बनानेवाली वस्तु होगी, विनाशकारी नहीं। वह जागृत मानव के

मस्तिष्क से उदभूत अत्युत्तम वस्तु होगी न कि उसी को विध्वंस करनेवाली विस्फोटक।

इस प्रकार विज्ञान के कई लाभ हैं। उसके सदुपयोग से मानव-जीवन सुखमय ही नहीं होता मंगल-मय भी हो सकता है। विज्ञान के ज़रिये ही आदमी पानी के अन्दर चल रहा है। आकाश में उड़ रहा है। भूगर्भ के अंदर घुस रहा है। चन्द्रलोक-यात्रा कर रहा है। इतना ही नहीं मृत्यु के ऊपर भी विजय पाकर मृत्युंजय बनने का प्रयत्न कर रहा है। ये सब विज्ञान के चमत्कार हैं, ये सब मानव को विज्ञान की देन है।

*****

क्रोध (निबंध)

-आचार्य रामचंद्र शुक्ल

लेखक परिचयः- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (4 अक्टूबर 1884 - 2 फरवरी 1941) हिन्दी आलोचक, कहानीकार, निबन्धकार, साहित्येतिहासकार, कोशकार, अनुवादक, कथाकार और कवि थे। उनके द्वारा लिखी गई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है हिंदी साहित्य का इतिहास (पुस्तक)| हिन्दी साहित्य का इतिहास, जिसके द्वारा काल निर्धारण एवं पाठ्यक्रम निर्माण में सहायता ली जाती है।

अध्ययन के प्रति लग्नशीलता शुक्ल में बाल्यकाल से ही थी। किंतु इसके लिए उन्हें अनुकूल वातावरण न मिल सका। मिर्जापुर के लंदन मिशन स्कूल से 1901 में स्कूल फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके पिता की इच्छा थी कि शुक्ल कचहरी में जाकर दफ्तर का काम सीखें, किंतु शुक्ल उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। पिता जी ने उन्हें वकालत पढ़ने के लिए इलाहाबाद भेजा पर उनकी रुचि वकालत में न होकर साहित्य में थी। अतः परिणाम यह हुआ कि वे उसमें अनुत्तीर्ण

रहे। शुक्ल जी के पिताजी ने उन्हें नायब तहसीलदारी का पद दिलाने का भी प्रयास किया, किंतु उनकी स्वाभिमानी प्रकृति के कारण यह संभव न हो सका।

शुक्ल जी ने 1903 से 1908 तक 'आनन्द कादम्बिनी' के सहायक संपादक का कार्य किया। 1904 से 1908 तक लंदन मिशन स्कूल में ड्राइंग के अध्यापक रहे। इसी समय से उनके लेख पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे और धीरे-धीरे उनकी विद्वता का प्रकाश चारों ओर फैल गया। उनकी योग्यता से प्रभावित होकर 1908 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें 'हिन्दी शब्दसागर' के सहायक संपादक का कार्य-भार सौंपा जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक पूरा किया। श्यामसुन्दर दास के शब्दों में 'शब्दसागर' की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकांश श्रेय रामचंद्र शुक्ल को प्राप्त है। वे 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के भी संपादक रहे। 1919 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक नियुक्त हुए जहाँ श्यामसुंदर दास की मृत्यु के बाद 1937 से जीवन के अंतिम काल 1941 तक विभागाध्यक्ष के पद पर रहे। 2 फरवरी 1941 को हृदय की गति रुक जाने से शुक्ल जी का देहांत हो गया। 'चिन्तामणि' संग्रह से यह निबंध लिया गया है।

'क्रोध' मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध है। विषय की दृष्टि से ऐसे निबन्ध मनोविज्ञान की सीमा में अते हैं लेकिन शुक्लजी ने उसे साहित्यिक निबन्ध बना दिया है। जिसका कारण है उनका जीवन अनुभव। क्रोध यों उत्पन्न होता है, दु;ख और क्रोध में क्या सम्बन्ध है, सामाजिका जीवन में क्रोध का क्या महत्व है, क्रोध की मानसिकता-जैसे सम्बन्धित पहलुओं का विश्लेषण करते जाते हैं जिससे उनके जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण का पता चलता है। 'वैर का आचार या मुरब्बा है।' जैसा वाक्य मनिवैग्यानिक नहीं, साहित्यकार की कह सकता है।

***

क्रोध दुःख के चेतन कारण के साक्षात्कार या अनुमान से उत्पन्न होता है। साक्षात्कार के समय दुःख और उसके कारण के सम्बन्ध का परिज्ञान आवश्यक है। तीन चार महीने के बच्चे को कोई हाथ उठा कर मार दे तो उसने हाथ उठाते तो देखा है पर अपनी पीड़ा और उस हाथ उठाने से क्या सम्बन्ध है, यह वह नहीं जानता है। अतः वह केवल रोकर अपना दुःख मात्र प्रकट कर देता है।

दुःख के कारण को स्पष्ट धारणा के बिना क्रोध का उदय नहीं होता। दुःख के सज्ञान कारण पर प्रबल प्रभाव डालने में प्रवृत्त करनेवाला मनोविकार होने के कारण क्रोध का आविर्भाव बहुत पहले देखा जाता है। शिशु अपनी माता की आकृति से परिचित हो जाने पर ज्योंही यह जान जाता है कि दूध इसी से मिलता है, भूखा होने पर वह उसे देखते ही अपने रोने में कुछ क्रोध का आभास देने लगता है।

सामाजिक जीवन में क्रोध की ज़रूरत बराबर पड़ती है। यदि क्रोध न हो तो मनुष्य दूसरों के द्वारा पहुँचाए जानेवाले बहुत से कष्टों का चिर-निवृत्ति का उपाय ही न कर सके। कोई मनुष्य किसी दुष्ट के नित्य दो-चार प्रहार सहता है। यदि उसमें क्रोध का विकास नहीं हुआ है तो वह केवल आह-ऊह करेगा जिसका उस दुष्ट पर कोई प्रभाव नहीं। उस दुष्ट के हृदय में विवेक, दया आदि उत्पन्न करने में बहुत समय लगेगा। संसार किसी को इतना समय ऐसे छोटे-छोटे कामों के लिए नहीं दे सकता। भयभीत होकर भी प्राणी अपनी रक्षा कभी कभी कर लेता

है पर समाज में इस प्रकार प्राप्त दुःख-निवृत्ति चिरस्थायिनी नहीं होती। हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि क्रोध के समय क्रोध करनेवाले के मन में सदा भावी कष्ट से बचने का उद्देश रहा करता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि चेतन सृष्टि के भीतर क्रोध का विधान इसीलिए है।

जिससे एक बार दुःख पहुँचा, पर उसके दुहराए जाने की संभावना कुछ भी नहीं है उसको जो कष्ट पहुँचाया जाता है वह प्रतिकार मात्र है, उसमें रक्षा की भावना कुछ भी नहीं रहती। अधिकतर क्रोध इसी रूप में देखा जाता है। एक दूसरे से अपरिचित दो आदमी रेल पर चले जा रहे हैं। इनमें से एक को आगे ही के स्टेशन पर उतरना है। स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते बात ही बात में एक ने दूसरे को एक तमाचा जड़ दिया और उतरने की तैयारी करने लगा। अब दूसरा मनुष्य भी यदि उतरते-उतरते उसे एक तमाचा लगा दे तो यह उसका बदला या प्रतिकार ही कहा जायगा, क्योंकि उसे फिर उसी व्यक्ति से तमाचे खाने का कुछ भी निश्चय नहीं था। जहाँ और दुःख पहुँचने की

कुछ भी सम्भावना होगी वहाँ शुद्ध प्रतिकार न होगा, उसमें स्वरक्षा की भावना भी मिली होगी।

हमारा पड़ोसी कई दिनों से नित्य आकर हमें दो-चार टेढ़ी-सीधी सुना जाता है। यदि हम एक दिन उसे पकड़कर पीट दें तो हमारा यह कर्म शुद्ध प्रतिकार न कहलाएगा, क्योंकि हमारी दृष्टि नित्य गालियाँ सहने के दुःख से बचने के परिणाम की ओर भी समझी जायगी। इन दोनों दृष्टान्तों को ध्यानपूर्वक देखने से पता लगेगा कि दुःख से उद्विग्न होकर दुःखदाता को कष्ट पहुँचाने की प्रवृत्ति दोनों में है; पर एक से वह परिणाम आदि का विचार बिलकुल छोड़े हुए हैं। और दूसरे में कुछ लिए हुए। इनमें से पहले दृष्टान्त का क्रोध उपयोगी नहीं दिखाई पड़ता। पर क्रोध करनेवाले के पक्ष में उसका उपयोग चाहे न हो, पर लोक के भीतर वह बिलकुल खाली नहीं जाता। दुःख पहुँचानेवाले से हमें फिर दुःख पहुँचने का डर न सही, पर समाज को तो है। इससे उसे उचितदण्ड दे देने से पहले तो उसी की शिक्षा या भलाई हो जाती है, फिर समाज के और लोगों के बचाव का बीज भी बो दिया जाता है। यहाँ

पर भी वही बात है कि क्रोध के समय लोगों के मन में लोक-कल्याण की यह व्यापक भावना सदा नहीं रहा करती। अधिकतर तो ऐसा क्रोध प्रतिकार के रूप में ही होता है।

यह कहा जा चुका है कि क्रोध दुःख के चेतन कारण के साक्षात्कार या परिज्ञान से होता है। अतः एक तो जहाँ कार्य्य-कारण के सम्बन्ध ज्ञान में त्रुटि या भूल होती है वहाँ क्रोध धोखा देता है। दूसरी बात यह है कि क्रोध करनेवाला जिस ओर से दुःख आता है उसी ओर देखता है; अपनी ओर नहीं। जिसने दुःख पहुँचाया है उसका नाश हो या उसे दुःख पहुँचे, क्रुद्ध का यही लक्ष्य होता है। न तो वह यह देखता है कि मैंने भी कुछ किया है या नहीं और न इस बात का ध्यान रहता है कि क्रोध के वेग में मैं जो कुछ करूँगा उसका परिणाम क्या होगा। यही क्रोध का अन्धापन है। इसी से एक तो मनोविकार ही एक दूसरे को परिमित किया करते हैं; ऊपर से बुद्धि या विवेक भी उन पर अंकुश रखता है। यदि क्रोध इतना उग्र हुआ कि मन में दुःखदाता की शक्ति के रूप और परिणाम

के निश्चय, दया-भय आदि और भावों के सञ्चार तथा उचित अनुचित के विचार के लिये जगह ही न रही तो बड़ा अनर्थ खड़ा हो जाता है। जैसे यदि कोई सुने कि उसका शत्रु बीस पचीस आदमी लेकर उसे मारने आ रहा है और वह चट क्रोध से व्याकुल होकर बिना शत्रु की शक्ति का विचार और अपनी रक्षा का पूरा प्रबन्ध किये उसे मारने के लिए अकेले दौड़ पड़े तो उसके मारे जाने में बहुत कम सन्देह समझा जायगा। अतः कारण के यथार्थ निश्चय के उपरान्त, उसका उपदेश अच्छी तरह समझ लेने पर ही आवश्वक मात्रा और उपयुक्त स्थिति में ही क्रोध वह काम दे सकता है जिसके लिए उसका विकास होता है।

क्रोध की उग्र चेष्टाओं का लक्ष्य हानि या पीड़ा पहुँचाने के पहले आलम्बन में भय का सञ्चार करना रहता है। जिस पर क्रोध प्रकट किया जाता है वह यदि डर जाता है और नम्र होकर पश्चात्ताप करता है तो क्षमा का अवसर सामने आता है। क्रोध का गर्जन-तर्जन क्रोधपात्र के लिये भावी दुष्परिणाम की सूचना है, जिससे कभी-कभी उद्देश

की पूर्ति हो जाती है और दुष्परिणाम की नौबत नहीं आती। एक की उग्र आकृति देख दूसरा किसी अनिष्ट व्यापार से विरत हो जाता है या नम्र होकर पूर्वकृत दुर्व्यवहार के लिए क्षमा चाहता है। बहुत से स्थलों पर तो क्रोध का लक्ष्य किसी का गर्व चूर्ण करना मात्र रहता है अर्थात् दुःख का विषय केवल दूसरे का गर्व या अहङ्कार होता है। अभिमान दूसरों के मान में या उसकी भावना में बाधा डालता है, इससे वह बहुत से लोगों को यों ही खटका करता है। लोग जिस तरह हो सके–अपमान द्वारा, हानि द्वारा–अभिमानी को नम्र करना चाहते हैं। अभिमान पर जो रोष होता है उसकी प्रवृत्ति अभिमानी को केवल नम्र करने की रहती है; उसको हानि या पीड़ा पहुँचाने का उद्देश नहीं होता संसार में बहुत से अभिमान का उपचार अपमान द्वारा ही हो जाता है।

कभी-कभी लोग अपने कुटुम्बियों या स्नेहियों से झगड़कर क्रोध में अपना ही सिर पटक देते हैं। यह सिर पटकना अपने को दुःख पहुँचाने के अभिप्राय से नहीं होता, क्योंकि बिलकुल बेगानों के साथ कोई ऐसा नहीं करता। जब

किसी को क्रोध में अपना ही सिर पटकते या अंग-भंग करते देखें तब समझ लेना चाहिए कि उसका क्रोध ऐसे व्यक्ति के ऊपर है जिसे उसके सिर पटकने की परवा है अर्थात् जिसे उसका सिर फूटने से उस समय नहीं तो आगे चलकर दुःख पहुँचेगा।

क्रोध का वेग इतना प्रबल होता है कि कभी-कभी मनुष्य यह भी विचार नहीं करता कि जिसने दुःख पहुँचाया है उसमें दुःख पहुँचाने की इच्छा थी या नहीं। इसी से कभी तो वह अचानक पैर कुचल जाने पर किसी को मार बैठता है और कभी ठोकर खाकर कड़्कड़ पत्थर तोड़ने लगता है। चाणक्य ब्राह्मण अपना विवाह करने जाता था। मार्ग में कुश उसके पैर में चुभे। वह चट मट्ठा और कुदारी लेकर पहुँचा और कुशों को उखाड़ उखाड़कर उनकी जड़ों में मट्ठा देने लगा। एक बार मैंने देखा कि एक ब्राह्मण देवता चूल्हा फूँकते-फूँकते थक गए। जब आग न जली तब उस पर क्रोध करके चूल्हे में, पानी डाल-किनारे हो गए। इस प्रकार का क्रोध अपरिष्कृत है। यात्रियों ने बहुत से ऐसे जंगलियों का हाल लिखा है, जो रास्ते में पत्थर

की ठोकर लगने पर बिना उसको चूर चूर किए आगे नहीं बढ़ते। अधिक अभ्यास के कारण यदि कोई मनोविकार बहुत प्रबल पड़ जाता है तो वह अन्तः प्रकृति में अव्यवस्था उत्पन्न कर मनुष्य को बचपन से मिलती-जुलती अवस्था में ले जाकर पटक देता है।

क्रोध सब मनोविकारों से फुरतीला है इसी से अवसर पड़ने पर यह और दूसरे मनोविकारों का भी साथ देकर उनकी तुष्टि का साधक होता है। कभी वह दया के साथ कूदता है, कभी घृणा के। एक क्रूर कुमार्गी किसी अनाथ अबला पर अत्याचार कर रहा है। हमारे हृदय में उस अनाथ अबला के प्रति दया उमड़ रही है। पर दया की अपनी शक्ति तो त्याग और कोमल व्यवहार तक होती है यदि वह स्त्री अर्थकष्ट में होती तो उसे कुछ देकर हम अपनी दया के वेग को शान्त कर लेते। पर यहाँ तो उस अबला के दुःख का कारण मूर्त्तिमान् तथा अपने विरुद्ध प्रयत्नों को ज्ञानपूर्वक रोकने की शक्ति रखनेवाला है। ऐसी अवस्था में क्रोध ही उस अत्याचारी के दमन के लिए उत्तेजित करता है जिसके बिना हमारी दया ही व्यर्थ

जाती। क्रोध अपनी इस सहायता के बदले में दया की वाहवाही को नहीं बँटाता। काम क्रोध करता है, पर नाम दया ही का होता है। लोग यही कहते हैं कि "उसने दया करके बचा लिया" यह कोई नहीं कहता कि "क्रोध करके बचा लिया।" ऐसे अवसरो पर यदि क्रोध दया का साथ न दे तो दया अपनी प्रवृत्ति के अनुसार परिणाम उपस्थित ही नहीं कर सकती।

क्रोध शान्ति-भंग करनेवाला मनोविकार है। एक का क्रोध दूसरे में भी क्रोध का सञ्चार करता है। जिसके प्रति क्रोध-प्रदर्शन होता है वह तत्काल अपमान का अनुभव करता है। और इस दुःख पर उसकी भी त्योरी चढ़ जाती है। यह विचार करनेवाले बहुत थोड़े निकलते हैं कि हम पर जो क्रोध प्रकट किया जा रहा है वह उचित है या अनुचित। इसी से धर्म, नीति और शिष्टाचार तीनों में क्रोध के निरोध का उपदेश पाया जाता है। सन्त लोग तो खलों के वचन सहते ही हैं; दुनियादार लोग भी न जाने कितनी ऊँची-नीची पचाते रहते हैं। सभ्यता के व्यवहार में भी क्रोध नहीं तो क्रोध के चिह्न दबाये जाते हैं। इस

प्रकार का प्रतिबन्ध समाज की सुख-शान्ति के लिए बहुत आवश्यक है। पर इस प्रतिबन्ध की भी सीमा है। यह परपीड़कोन्मुख क्रोध तक नहीं पहुँचता।

क्रोध के निरोध का उपदेश अर्थ-परायण और धर्म-परायण दोनों देते है। पर दोनों में जिसे अति से अधिक सावधान रहना चाहिए वही कुछ भी नहीं रहता। बाकी रुपया वसूल करने का ढंग बताने वाला चाहे कड़े पड़ने की शिक्षा दे भी दे, पर धज के साथ धर्म की ध्वजा लेकर चलनेवाला धोखे में भी क्रोध को पाप का बाप ही कहेगा। क्रोध रोकने का अभ्यास ठगों और स्वार्थियों को सिद्धों और साधकों से कम नही होता। जिससे कुछ स्वार्थ निकालना रहता है, जिसे बातों में फँसाकर डगना रहता है, उसकी कठोर से कठोर और अनुचित बातों पर न जाने कितने लोग ज़रा भी क्रोध नहीं करते पर उनका यह अक्रोध न धर्म का लक्षण है, न साधन।

क्रोध के प्रेरक दो प्रकार के दुःख हो सकते हैं–अपना दुःख और पराया दुःख। जिस क्रोध के त्याग का उपदेश दिया जाता है वह पहले प्रकार के दुःख से उत्पन्न क्रोध है।

दूसरे के दुःख पर उत्पन्न क्रोध बुराई की हद के बाहर समझा जाता है। क्रोधोत्तेजक दुःख जितना ही अपने सम्पर्क से दूर होगा उतना ही लोक में क्रोध का स्वरूप सुन्दर और मनोहर दिखाई देगा अपने दुःख से आगे बढ़ने पर भी कुछ दूर तक क्रोध का कारण थोड़ा बहुत अपना ही दुःख कहा जा सकता है—जैसे, अपने आत्मीय या परिजन का दुःख, इष्टमित्र का दुःख। इसके आगे भी जहाँ तक दुःख की भावना के साथ कुछ ऐसी विशेषता लगी रहेगी कि जिसे कष्ट पहुँचाया जा रहा है वह हमारे ग्राम, पुर या देश का रहनेवाला है, वहाँ तक हमारे क्रोध के सौन्दर्य की पूर्णता में कुछ कसर रहेगी। जहाँ उक्त भावना निर्विशेष रहेगी वहीं सच्ची पर दुःख कातरता मानी जायगी, वहीं क्रोध के स्वरूप को पूर्ण सौन्दर्य प्राप्त होगा—ऐसा सौन्दर्य जो काव्यक्षेत्र के बीच भी जगमगाता आया है।

यह कोध करुणा के आज्ञाकारी सेवक के रूप में हमारे सामने आता है। स्वामी से सेवक कुछ कठिन होते ही हैं; उनमें कुछ अधिक कठोरता रहती ही है। पर यह कठोरता

ऐसी कठोरता का भंग करने के लिए होती है जो पिघलनेवाली नहीं होती। क्रौंच के वध पर वाल्मीकि मुनि के करुण क्रोध का सौन्दर्य एक महाकाव्य का सौन्दर्य्य हुआ। उक्त सौन्दर्य्य का कारण है निर्विशेषता। वाल्मीकि के क्रोध के भीतर प्राणिमात्र के दुःख की सहानुभूति छिपी है–राम के क्रोध के भीतर सम्पूर्ण लोक के दुःख का क्षोभ समाया हुआ है। क्षमा जहाँ से श्रीहत हो जाती है वहीं से क्रोध के सौन्दर्य का आरम्भ होता है। शिशुपाल की बहुत सी बुराइयों तक जब श्रीकृष्ण की क्षमा पहुँच चुकी तब जाकर उसका लौकिक लावण्य फीका पड़ने लगा और क्रोध की समीचीनता का सूत्रपात हुआ। अपने ही दुःख पर उत्पन्न क्रोध तो प्रायः समीचीनता ही तक रह जाता है, सौन्दर्य-दशा तक नहीं पहुँचता। दूसरे के दुःख पर उत्पन्न क्रोध में या तो हमें तत्काल क्षमा का अवसर या अधिकार ही नहीं रहता अथवा वह अपना प्रभाव खो चुकी रहती है।

बहुत दूर तक और बहुत काल से पीड़ा पहुँचाते चले आते हुए किसी घोर अत्याचारी का बना रहना ही लोक की

क्षमा की सीमा है। इसके आगे क्षमा न दिखाई देगी– नैराश्य, कायरता और शिथिलता की छाई दिखाई पड़ेगी। ऐसी गहरी उदासी की छाया के बीच आशा, उत्साह और तत्परता की प्रभा जिस क्रोधाग्नि के साथ फूटती दिखाई पड़ेगी उसके सौन्दर्य का अनुभव सारा लोक करेगा। राम का कालाग्नि-सदृश क्रोध ऐसा ही है। वह सात्विक तेज है; तामस ताप नहीं।

दण्ड कोप का ही एक विधान है। राजदण्ड राजकोप है, जहाँ कोप लोककोप और लोककोप धर्मकोप है। राजकोप धर्मकोप से राज्य-एकदम भिन्न दिखाई पड़े वहाँ उसे राजकोप न समझ कर कुछ विशेष मनुष्यों का कोप समझना चाहिए। ऐसा कोप राजकोप के महत्त्व और पवित्रता का अधिकारी नहीं हो सकता। उसका सम्मान जनता अपने लिए आवश्यक नहीं समझ सकती।

वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है। जिससे हमें दुःख पहुँचा है उस पर यदि हमने क्रोध किया और यह क्रोध यदि हमारे हृदय में बहुत दिनों तक टिका रहा तो वह वैर कहलाता है। इस स्थायी रूप में टिक जाने के कारण

क्रोध का वेग और उग्रता तो धीमी पड़ जाती है पर लक्ष्य को पीड़ित करने की प्रेरणा बराबर बहुत काल तक हुआ करती है। क्रोध अपना बचाव करते हुए शत्रु को पीड़ित करने की युक्ति आदि सोचने का समय प्रायः नहीं देता, पर वैर उसके लिए बहुत समय देता है। सच पूछिए तो क्रोध और बैर का भेद केवल कालकृत है। दुःख पहुँचने के साथ ही दुःखदाता को पीड़ित करने की प्रेरणा करनेवाला मनोविकार क्रोध और कुछ काल बीत जाने पर प्रेरणा करनेवाला भाव वैर है। किसी ने आपको गाली दी। यदि आपने उसी समय उसे मार दिया तो आपने क्रोध किया। मान लीजिए कि वह गाली देकर भाग गया और दो महीने बाद आपको कहीं मिला। अब यदि आपने उससे बिना फिर गाली सुने, मिलने के साथ ही उसे मार दिया तो यह आपका वैर निकालना हुआ। इस विवरण से स्पष्ट है कि वैर उन्हीं प्राणियो में होता है जिनमें धारणा अर्थात् भावों के सञ्चय की शक्ति होती है। पशु और बच्चे किसी से वैर नहीं मानते। चूहे और बिल्ली के सम्बन्ध का 'वैर' नाम आलङ्कारिक है। आदमी का न आम अंगूर से से

कुछ वैर है न भेड़ बकरे से पशु और बच्चे दोनों क्रोध करते हैं और थोड़ी देर के बाद भूल जाते हैं।

क्रोध का एक हलका रूप है चिड़चिड़ाहट, जिसकी व्यञ्जना प्रायः शब्दों ही तक रहती है। इसका कारण भी वैसा उग्र नहीं होता। कभी-कभी चित्त उग्र रहने, किसी प्रवृत्ति में बाधा पड़ने या किसी बात का ठीक सुभीता न बैठने के कारण ही लोग चिड़चिड़ा उठते हैं। ऐसे सामान्य कारणों के अवसर बहुत अधिक आते रहते हैं इससे चिड़चिड़ाहट के स्वभावगत होने की सम्भावना बहुत अधिक रहती है। किसी मत, सम्प्रदाय या संस्था के भीतर निरूपित आदर्शों पर ही अनन्य दृष्टि रखनेवाले बाहर की दुनिया देख-देख कर अपने जीवन भर चिड़चिड़ाते चले जाते हैं। जिधर निकलते हैं, रास्ते भर मुँह बिगड़ा रहता है। चिड़चिड़ाहट एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता है, इसी से रोगियों और बुड्ढों में अधिक पाई जाती है। इसका स्वरूप उग्र और भयङ्कर न होने से यह बहुतों के–विशेषतः बालकों के–विनोद की एक सामग्री भी हो जाती है। बालकों को चिड़चिड़े बुड्ढों को चिढ़ाने में बहुत आनन्द आता है और

कुछ विनोदी बुड्ढे भी चिढ़ने की नक़ल किया करते हैं। कोई 'राधाकृष्ण' कहने से, कोई 'सीताराम' पुकारने से और कोई 'करेले' का नाम लेने से चिढ़ता है और अपने पीछे लड़कों की एक खासी भीड़ लगाए फिरता है। जिस प्रकार लोगों को हँसने के लिए कुछ लोग मूर्ख या बेवकूफ़ बनते हैं उसी प्रकार चिड़चिड़े भी। मूर्खता मूर्ख को चाहे रुलाए पर दुनिया को तो हँसाती ही है। मूर्ख हास्यरस के बड़े प्राचीन आलम्बन हैं। न जाने कब से वे इस संसार की रुखाई के बीच हास का विकास कराते चले आ रहे हैं। आज भी दुनिया को हँसने का हौसला बहुत कुछ उन्हीं की बरकत से हुआ करता है।

किसी बात का बुरा लगना, उसकी असह्यता का क्षोभयुक्त और आवेगपूर्ण अनुभव होना, अमर्ष कहलाता है। पूर्ण क्रोध की अवस्था में मनुष्य दुःख पहुँचानेवाले पात्र की ओर ही उन्मुख रहता है—उसी को भयभीत या पीड़ित करने की चेष्टा में प्रवृत्त रहता है। अमर्ष में दुःख पहुँचानेवाली बात के ब्योरो पर और उसकी असह्यता पर विशेष ध्यान रहता है। इसकी ठीक व्यञ्जना ऐसे वाक्यों

में समझनी चाहिए–"तुमने मेरे साथ यह किया, वह किया। अब तक तो मैं सहता आया, अब नहीं सह सकता"। इसके आगे बढ़कर जब कोई दाँत पीसता और गरजता हुआ यह कहने लगे कि "मैं तुम्हें धूल में मिला दूँगा; तुम्हारा घर खोदकर फेंक दूँगा" तब क्रोध का पूर्ण स्वरूप समझना चाहिए।

*****

पर्यावरण (संग्रहित निबंध)

-प्रभु उपासे

प्रस्तावना

हाल के कुछ दशकों में मानवीय गतिविधियों के कारण पर्यावरण पर बहुत बुरा असर पड़ा है। ओजोन परत का क्षरण इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। साथ ही वैश्विक उष्मीयता (ग्लोबल वार्मिंग) दुनिया के लिए खतरे की घंटी है। मानवों द्वारा वनों की कटाई ही पर्यावरण असंतुलन का सबसे बड़ा कारण है। पर्यावरण को कई अवांछनीय कारक जोकि मानव स्वास्थ्य, प्राकृतिक संसाधनों और प्रदूषण के कारकों जैसे प्रदूषण, हरितगृह प्रभाव (ग्रीनहाउस) आदि के कारण प्रभावित होते हैं।

पर्यावरण सुरक्षा का उद्देश्य

पर्यावरण की सुरक्षा और मानव अस्तित्व के लिए उसकी प्रासंगिकता को देखते हुए 3-14 जून 1992, के मध्य ब्राजील के शहर 'रियो डी जेनेरियो' में प्रथम पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन

हुआ, जिसमें विश्व के 174 देशों नें हिस्सा लिया। पर्यावरण का संरक्षण समस्त मानव जाति के साथ-साथ इस धरती के सभी जीव-जंतुओं के जीवन के लिए अति आवश्यक है।

यह सिलसिला आगे भी प्रवाहमान रहा और दस साल बाद सन् 2002 में जोहान्सबर्ग में पृथ्वी सम्मेलन का पुनः आयोजन किया गया और विश्व के सभी देशों से पर्यावरण संरक्षण के लिए बनाये गये नियमों का पालन करने का आग्रह किया गया। यदि पर्यावरण संरक्षित रहेगा, तभी यह पृथ्वी सुरक्षित रहेगी, और पृथ्वी सही सलामत रहेगी, तभी हम जीवित रह पायेंगे। सभी एक-दूसरे से जुड़े है। पर्यावरण का संरक्षण हमें किसी और के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए करना है।

जलवायु परिवर्तन

97% जलवायु वैज्ञानिक इस बात को मानते है कि जलवायु परिवर्तन हो रहा है और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन इसका मुख्य कारण है। शायद अधिक चरम मौसम की घटनाओं जैसे कि सूखा, जंगल की आग, गर्मी की लहरें और बाढ़ जैसी घटनाओं कार्बन के अधिक उत्सर्जन के कारण ही होता है।

अब दुनिया को सावधान हो जाना चाहिए और कार्बन उत्सर्जन को कम कर देना चाहिए, अन्यथा इसके भीषण परिणाम भोगने पड़ सकते हैं। इस वक़्त विश्व का लगभग 21 प्रतिशत कार्बन अकेले अमेरिका उत्सर्जित करता है।

अगर प्रत्येक व्यक्ति मिल कर अपना योगदान दें तो कार्बन का उत्सर्जन कम किया जा सकता है। हम अपने घर से ही शुरुआत कर सकते हैं। कम से कम गाड़ियों का इस्तमाल करें, और कोशिश करें कि विद्युत चलित वाहनों का इस्तमाल करें।

वनोन्मूलन

वनों की कटाई से कार्बन की मात्रा पर्यावरण में बहुत ज्यादा हो गयी है। पेड़ कार्बन डाई ऑक्साइड का अवशोषण कर लेते हैं और हमें प्राणवायु ऑक्सीजन देते हैं, किंतु उनकी कटाई से पूरा चक्र ही बाधित हो गया है। यह अनुमान है कि कुल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का 15 प्रतिशत वनों की कटाई से होता है।

पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम

हमारा पर्यावरण प्राकृतिक और कृत्रिम परिवेश, दोनों का मिलाजुला स्वरुप है। इसके अन्तर्गत पर्यावरण की गुणवत्ता के

संरक्षण की बात की जाती है। पर्यावरण सुरक्षा की गंभीरता को देखते हुए 5 जून, 1972 में पहली बार स्टॉकहोम (स्वीडन) में पहला पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया। पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए भारत ने भी महत्वपूर्ण कदम उठाया और 1986, में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम पारित कर दिया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वातावरण में घुले घातक रसायनों की अधिकता को कम करना और पारिस्थितिकीय तंत्र को प्रदूषण से बचाना है।

इस अधिनियम में कुल 26 धाराएं हैं। और इन धाराओं को चार अलग-अलग अध्यायों में विभक्त किया गया है। यह कानून पूरे भारतवर्ष में 19 नवंबर, 1986 से प्रभावी है। यह एक वृहद अधिनियम है जो पर्यावरण के सभी मुद्दों पर एकसमान रुप से नज़र रखता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि -

1.इस अधिनियम का निर्माण पर्यावरण के संरक्षण और सुरक्षा के लिए बनाया गया है।

2.यह पर्यावरण के लिए, किए गए स्टॉकहोम सम्मेलन के सभी नियमों का पालन करता है।

3.अपेक्षित कानूनों का गठन करता है और उनके बीच संतुलन स्थापित भी बनाये रखता है।
पर्यावरण के लिए अगर कोई खतरा उत्पन्न करता है तो उसके लिए दंड का भी प्रावधान है।

पर्यावरण सुरक्षा क्यों आवश्यक है

अगर समय रहते हम नहीं चेते और पर्यावरण को बचाने के बारे में नहीं सोचा तो, इसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। पूरे सौर-मंडल में केवल हमारी पृथ्वी पर ही जीवन संभव है। हमें समय रहते, पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त करके सुरक्षित करना है। इस सदी में हम लोग विकास के नाम पर पर्यावरण को लगातार नुकसान पहुंचा रहे हैं। अब हम ऐसी स्थिति में पहुंच गए हैं कि हम पर्यावरण संरक्षण के बिना इस ग्रह पर लंबे समय तक जीवित नहीं रह सकते हैं। इसलिए हम सभी को पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए।

उपसंहार

वन्यजीवों के आवासों पर मानव अतिक्रमण बढ़ने से जैव विविधता का तेजी से नुकसान हो रहा है जिससे खाद्य सुरक्षा,

जनसंख्या स्वास्थ्य और विश्व स्थिरता को खतरा है। जैव विविधता के नुकसान में जलवायु परिवर्तन का भी बड़ा योगदान है, क्योंकि कुछ प्रजातियां बदलते तापमान के अनुकूल नहीं बन पाती हैं। वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फंड के लिविंग प्लेनेट इंडेक्स के अनुसार, पिछले 35 वर्षों में जैव विविधता में 27 प्रतिशत की गिरावट आई है। उपभोक्ताओं के रूप में हम सभी पर्यावरण को नुकसान न पहुंचाने वाले उत्पादों को खरीदकर जैव विविधता की रक्षा में मदद कर सकते हैं। साथ ही पॉलिथीन के स्थान पर घर का बना कपड़े का थैला प्रयोग कर सकते हैं। यह प्रयास भी पर्यावरण संरक्षण में हाथ बंटाएगा।

*****

तकनीकी शब्दावली

क्र.सं.	अंग्रेजी	हिंदी
1	Assessment	आकलन
2	Computer	संगणक यंत्र
3	Astronomy	खगोल
4	Technology	प्रौद्योगिकी
5	Deta	दत्तांश
6	Collection	संग्रह
7	Profit	लाभ
8	Print	छपाई
9	Satellite	उपग्रह
10	Internet	अंतर्जाल
11	Research	अनुसंधान
12	Typing	टंकण
13	Machine	यंत्र या मशीन
14	Key-Board	कुंजीपटल
15	Printer	मुद्रक
16	Connection	संपर्क

17	Monitor	निगरानी करना
18	Software	साफ्टवेयर या तंत्रांश
19	Website	जालस्थल
20	Operating system	प्रचालन प्रणाली
21	Insert	डालना
22	Reference	संदर्भ
23	Document	दस्तावेज
24	Review	समीक्षा
25	Rows	पंक्तियाँ
26	Column	कालम या स्तंभ
27	e-mail	ई-मेल या इलेक्ट्रानिक मेल
28	Distribution	वितरण
29	Translation	अनुवाद
30	Repeat	दोहराना
31	Margin	अंतर या सीमा
32	Direction	दिशा
33	Merge	मिलना
34	Title	शीर्षक

35	System Administrator	प्रणाली प्रबंधक
36	Sensitive Information	संवेदनशील सूचना
37	Root Access	मूल प्रवेश
38	Risk Management	जोखिम प्रबंधन
39	Resolution	संकल्प
40	Removable media	हटाने योग्य माध्यम
41	Protected information	संरक्षित सूचना
42	Production system	उत्पादन प्रणाली
43	Physical security	भौतिक सुरक्षा
44	Complexity	जटिलता
45	Local storage	स्थानीय भंडारण
46	Lawful intercept	वैध अवरोधन
47	Intellectual property	बौद्धिक संपदा

48	Incident management	घटना का प्रबंधन
49	Encryption	कूट लेखन
50	Confidentiality	गोपनीयता

*****

समानार्थी शब्द

*(इसमें विद्यार्थियों को प्रत्येक शब्द के कम से कम **दो** अर्थ लिखना अनिवार्य है)*

1. **उत्तम** — रुचिर , प्रकृष्ट , सुदेश , उत्कृष्ट , श्रेष्ठ
2. **आर्थिक** — वित्त विषयक , राजस्व सम्बन्धी , अर्थ विषयक , वित्तीय।
3. **आगंतुक** — अतिथि , अभ्यागत , मेहमान।
4. **अंधकार** — अंधियारा , अँधेरा , तिमिर , तमस , तमिस्र , तम।
5. **आत्मसंयम** — इंद्रियसंयम , जितेन्द्र , आत्मनिग्रह , आत्मनियंत्रण।
6. **आरोग्य** — तंदुरुस्त , पुष्ट , स्वास्थ्य , सेहतमंद , सेहत,
7. **इंकलाब** —परिवर्तन , बग़ावत , विद्रोह , उलटफेर , राज्यक्रांति।
8. **उचित** — मुनासिब , योग्य , युक्तिसंगत , न्यायसंगत , समुचित , ठीक
9. **ऋतुराज** — मधुऋतु , मधुमास , बहार , वसंत।

10. **कशिश** — वशीभूत करना , आकर्षित करना, प्रवृत्त करना , सम्मोहित।
11. **खीझना** — झुँझलाना , ठुनकना , झल्लाना ,चिढ़ना।
12. **गृह** — धाम , निकेतन , आलय , निवास , सदन , गेह , निलय , घर।
13. **घोषणा-पत्र** — नीति-घोषपत्र , ज्ञापन-पत्र ,घोष-पत्र , मैनिफैस्टो।
14. **चारबाग** — उपवन , बगीचा , बाग , उद्यान।
15. **चाटुकारी** — लल्लोचप्पो , खुशामद , अनुनय , चापलूसी।
16. **जानकी** — जनकात्मजा , वैदही , जनकतनया , मिथिलेशकुमारी , सीता।
17. **ज्योत्स्ना** — चंद्रप्रभा , चाँदनी , जुन्हाई , कौमुदी।
18. **ठगना** — ऐंठना , चकमा देना , लूटना , धोखा देना , छलना , लूट लेना
19. **तथागत** — सिद्धार्थ , गौतम , बोधिसत्व , बुद्ध।
20. **दशकंधर** — दशकंठ , दशानन , रावण , लंकापति।
21. **दीप्ती** — आभा , प्रकाश , रोशनी , शोभा , उजाला , चमक , प्रभा।

22. **धरती** — अचला , पृथ्वी , वसुंधरा , ज़मीन , धरणी , वसुधा , भूमि , धरा
23. **नंदिनी** — तनुजा , पुत्री , सुता , बेटी , दुहिता , अंगजा ,
24. **निष्ठुर** — संगदिल , निर्दयी , क्रूर , निर्मम , कठोर।
25. **परिणति** — नतीजा , अंजाम , फल , परिणाम।
26. **पाहुना** — मेहमान , अतिथि , पाहुन , अभ्यागत।
27. **पछतावा** — पश्चात्ताप , प्रायश्चित , संताप , खिन्नता , दुख , खेद।
28. **परिष्कृत** — शुद्ध , साफ , स्वच्छ , निर्मल , अलंकृत , सुसज्जित , शिष्ट
29. **पांडुलिपि** — पांडुलेख , हस्तलिपि , मसौदा।
30. **प्रजातंत्र** — जनतंत्र , लोकतंत्र , गणतंत्र।
31. **फुर्तीला** — सक्रिय , तत्पर , स्फूर्तिवान , चुस्त , अविलंब।
32. **बाल** — चूल , चिकुर , कच , केश।
33. **बलिदान** — जीवनदान , प्राणत्याग , आत्मोत्सर्ग , न्यौछावर , कुर्बानी ,
34. **बेजोड़** — अनुपम , निराला , अद्वितीय , अनूप , अनूठा , अनोखा।

35. **भारती** — वागीशा , वाग्देवी , विद्या , सरस्वती , वागेश्वरी , शारदा
36. **मोर** — शिखावल , ध्वजी , कलापी , , शिखी , नीलकंठ , मयूर , केक
37. **मान** — प्रतिष्ठा , सम्मान , मर्यादा , गौरव , इज्जत ,
38. **मेधावी** — प्रतिभावान , विद्वान , बुद्धिमान, दिमागवाला।
39. **युधिष्ठिर** — कौन्तेय , धर्मपुत्र , धर्मराज , अजातशत्रु।
40. **यथार्थ** — सत्य , सच्चा , ठीक , वास्तविक , उचित, असली , सही।
41. **रंक** — दरिद्र , निर्धन , कंगाल , गरीब , धनहीन।
42. **रिपु** — दुश्मन , विरोधी , वैरी , शत्रु , द्वेषी।
43. **लड़की** — किशोरी, बालिका , कन्या , कुमारी,बाला।
44. **वणिक** — व्यवसायी , बनिया , व्यापारी , रोजगारी।
45. **विमल** — साफ , पवित्र , शुद्ध , स्वच्छ , निर्दोष
46. **शिक्षा** — उपदेश , परामर्श , पढ़ाई-लिखाई , सलाह , ज्ञान , शिक्षण , सबक
47. **श्री** — ऐश्वर्य शोभा , धन , चमक , सौंदर्य , आभा,

संपत्ति, रमणीयता।

48. **संबोधन** — आह्वान करना , पुकारना , बुलाना।
49. **सरकारी** — सार्वजनिक , शासकीय , राजकीय , शासनिक , आधिकारिक।
50. **हमेशा** — लगातार , सर्वदा , निरन्तर , बराबर , सदा

*****

अनेक शब्दों के लिए एक शब्द

1. अनुकरण करने योग्य -अनुकरणीय
2. जो कभी न मरे -अमर
3. जहाँ जाया न जा सके -अगम्य
4. धरती और आकाश के बीच का स्थान -अंतरिक्ष
5. ईश्वर में विश्वास रखनेवाला -आस्तिक
6. जिसकी कल्पना न की जा सके -अकल्पनीय
7. जो नेत्रों से दिखाई न दे -अगोचर
8. जिसे जीता न जा सके -अजेय
9. जो अपनी बात से न टले -अटल
10. आवश्यकता से अधिक वर्षा -अतिवृष्टि
11. हाथी को हाँकने का लोहे का हुक -अंकुश
12. किसी कार्य को बार बार करना -अभ्यास
13. जिसका कोई आकार न हो -निराकार
14. रात्रि में विचरण करने वाला -निशाचर
15. सब को समान दृष्टि से देखनेवाला -समदर्शी
16. जिसका अंत न हो -अनंत
17. अपना हित चाहने वाला -स्वार्थी

18. एक सप्ताह में होने वाला -साप्ताहिक
19. समय की दृष्टि से अनुकूल -समयानुकूल
20. आकाश में उड़ने वाला -नभचर
21. आधे से अधिक सम्मिलित लोगों की एक राय -बहुमत
22. पर्वत पर चढ़ने वाला -पर्वतारोही
23. पद से हटाया हुआ -पदच्युत
24. जो फूल आधा खिला हो -मुकुल
25. जानने की इच्छा -जिज्ञासु
26. जिसे पार करना कठिन हो -दुर्गम
27. एक महीने में होने वाला -मासिक
28. यथार्थ कहने वाला -यथार्थवादी
29. भविष्य में होने वाला -भावी
30. किसी बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना -अतिशयोक्ति
31. जिसे समझना बहुत कठिन हो -दुष्कर
32. दंड दिए जाने योग्य -दंडनीय
33. कम बोलने वाला -मितभाषी
34. तर्क के द्वारा जो माना गया हो -तर्कसम्मत
35. जंगल में लगनेवाली आग -दावानल

36. अभिनय करने वाली स्त्री -अभिनेत्री
37. फेंककर चलाया जाने वाला हथियार -अस्त्र
38. जो पहले कभी न हुआ हो -अभूतपूर्व
39. अध्यापन का काम करने वाला -अध्यापक
40. किसी एक पक्ष से संबंधित -एकपक्षीय
41. शत्रु का नाश करने वाला -शत्रुघ्न
42. छह कोनो वाली आकृति -षट्कोण
43. चार वेदों को जानने वाला -चतुर्वेदी
44. जिसका चिंतन किया जाना चाहिए -चिंतनीय
45. मूल बात को संक्षेप में लिखना -टिप्पणी
46. जिसकी घोषणा की गई हो -घोषित
47. जो नया नया आया हो -नवागंतुक
48. जिसके हृदय में दया न हो -निर्दय
49. जिसकी तुलना न की जा सके -अतुलनीय
50. जिसका कोई शुल्क न लिया जाए -निःशुल्क

*****

Pvu